आदर्श-विवाह

केवल बारह घंटे में तमाम वैवाहिक
विधियों कि परिपूर्णता।

लेखक
गोपीनाथ शास्त्री चुलैट

आदर्श--विवाह ।

ग्रंथकर्ता व प्रकाशक
सत्-युग प्रतिष्ठापना चार्य ज्योतिर्भूषण
गोपीनाथ शास्त्री चुलैट.

मुद्रकः—
टी. एम्. पटेल,
'सरस्वती' पावर प्रेस, अमरावती.

मूल्य -॥-) आठ आना.

पुस्तक मिलनेका पत्ता:--

१ तत्व-ज्ञान संचारक मंडल, एलिचपूर पो. सरमसपुरा।

२ ज्योतिष कार्यालय घ. नं. ५ छीपा बाखल इंदोर।

विषय सूची ।

छप रहे हैं।

स्मार्त प्रभाकर—गणपति पूजन, कलश पूजन, पुण्याह वाचन। मातृका स्थापन, नांदिमुख श्राद्ध, ग्रह पूजन, सर्वतो भद्र के देवत्य सहित पूजन द्वादश लिंगतो भद्रांतर गत सर्वतो भद्र भद्र—लिंगतो भद्र पूजन, वास्तु पुजन प्रकार, देवता स्थापन, आदि कई स्मार्त विधिसे ओतः प्रोत यह स्वतंत्र ऐसा अमौलिक ग्रंथ छपरहा है। इस ग्रंथ के जरिये सर्व साधारण विद्यार्थी भी प्रतिष्ठा वास्तु आदि महत् कार्य कुशलतासे करा सकता है। मूल्य २ रु.

गोत्र प्रवर मिमांसा—ऋषि, प्रवर, गौत्र, शाखा, आदि इस ग्रंथमें गौड़ जाति के १४४४ गोत्र, प्रवर, ऋषि इत्यादि अति प्रयत्न करके संग्रह किये है यह पुस्तक प्रत्येक गौड़ बंधूको अवश्य ही संग्रह में रखने योग्य है। प्राचीन पुस्तक के आधार पर इसको सर्वांगसुंदर बनाया है। मूल्य ।॥)

यज्ञ विज्ञान—यज्ञ क्यों किया जाते हैं। यज्ञ कितने प्रकारके हैं। वह देवों के पास कैसे और किस स्वरुप मे जाकर प्राप्त होते हैं। उसकी वैज्ञानिक रीति के अनुसार इस ग्रथ में गहरी छान बीन की है। और वैज्ञानिक पद्धति से सिद्ध कर दिखाया की यज्ञ का सचा स्वरूप क्या है।

वेदो में क्या है—वेदों का कोई मंत्र जब दृष्टि संम्मुख आता है; तब उन ऋचा ओंका अर्थ करना अत्यंत गहन और जटिल हो जाता है जह पारिभाषिक शद्बों का परिचय न हो। इस ग्रंथ में इस बातपर विशेष प्रकाश डाला गया है कि वेदो में देवता किन को कहा है उन का रहने का ठिकाना क्या है, उसका मूल सिद्धान्त क्या है; और दृष्टान्त क्या है इन बातों का यहां इस किताब के जरिए पृथक् पृथक् निर्णय कर सकता है। और परिभाषा शीघ्र समझमें आती है। साथ में वेद का अर्थ करनेका अद्भुत तरीका दिखाया हैं।

आदर्श विवाह ।

केवल बारह घंटेमें तमाम वैवाहिक विधियोंकि परिपूर्णता ।

१. अन्यान्य मनुष्य समाजोंके (पतिपत्नि संबंध की) भाँति हिन्दुओंका विवाह केवल एक विषयोपभोग प्रद साधारण कार्य नहीं है। इसका सामाजिक उन्नति एवं धर्मार्थकाम साधन में पूरा पूरा संबंध होनेसे वेदकालीन ऋषिगणोंने मानव जीवन को व्यवस्थित सुखमय करने का मुख्यसाधन जो गृहस्थाश्रम है; उसका आरंभ इसीके अधीन माना है। इसलिये उन्होंने अपनी अलौकिक दूरदर्शिता और निजके अनेक वर्षोंके अनुभवोंसे इस विषयके ऊपर अनेकानेक वैदिक मंत्र, सूत्र और कथानक बनाए हैं। इसीके आधारपर आगे शास्त्रोंकी रचना होकर इसकी कई व्यवस्थाएं स्थिर कीगई हैं। इसलिये अन्यान्य विवाहोंकी अपेक्षा यह अतुलनीय होगया है। इससे हम कहसकते हैं कि हिन्दुओंका विवाह ही **आदर्श विवाह** है। केवल विचार करने की बात इतनी ही है कि—

२. वर्तमानमें बहुतसी जगह जो शास्त्रविधिसे विवाह होते हैं और जिन्हें लोग आदर्श मानकर करते चलेजा रहे हैं; उनकी तथा स्त्रियोंके अन्यान्य अधिकारों की तुलना जब हम प्राचीन वैदिक जमाने से करने लगते हैं तब हमें इनकी आदर्शतामें बहुतही अंतर नजर आता है।

३. प्राचीन ऋषिमुनि और आचार्योंनें कई वर्षोंके प्रत्यक्ष अनुभवद्वारा गृह्यसूत्रों में विधी विधान स्थिर किये हैं। और तदनुसार उसके संबंधसे शास्त्रोंमें उनके अधिकार व दायभागादिमें जो व्यवस्था निश्चित की गई है, वह सनातन कालसे समाजकी सर्वांगपूर्ण उन्नति करनेवाली होनेसे, यह आदर्शरूप मानी जाती है। किंतु उनमें स्थिरकिये हुए विधानोंमें आधुनिक कलियुगी-

न आपत्तियोंके कारणोंसे (संवत् ७८१ शाके ६४६)* के बादके टीकाकार एवं निबंध कारोंने जो कई बातें धर्मकी बाधक होते हुएभी उन्हें देशकाल परिस्थिति के अनुसार धर्मकी साधक समझी है। ऐसे कृत्रिमप्राक्षिप्त स्मृति पुराणादिके अंदर (मिला) कर देने के कारण आजकल उन प्राचीन बातोंकी एवं वैवाहिक प्रथाकी आदर्शता लुप्तप्राय होरही है।

४. जिसके फलस्वरूप देशाचार व कुलाचार का परिवर्तन होते होते कपोल कल्पित और मनघडंत बातें जिधर उधर प्रचलित होरही हैं। और वेद-संहिता, आरण्यक, ब्राह्मण ग्रंथ श्रौतसूत्र व गृह्यसूत्रादिकोंमें कहे हुए विधि विधान और निश्चित की हुई व्यवस्थाएं विस्मृत होते हुए रसातलको चली जा रही है।

५. इसलिये अब हमें स्पष्ट करके बाता देना है कि वास्तव में श्रुति सम्मत हमारे धर्माचार क्या थे; जो कि हजारों ही नहीं बरन लाखों वर्षोंसे चले आरहेथे; और आज भी बने हुए गृह्यसूत्रादिकों के ही आधारपर संपूर्ण संस्कारादि के विधि विधान एवं धर्माचार करते आरहे हैं। अतएव यही एक अविच्छिन्न श्रुति सम्मत धर्म है।

६. कर्कोपाध्याय ने इसी बात को स्पष्ट करके बताया है कि—
"प्रत्यक्षाहि श्रुतयः श्रौतेषु, स्मार्तेषुच पुनः कर्तृसामान्या दनुमेयाः श्रुतयः ॥ वैदिक स्मरणादेव स्मृतीनां प्रामाण्यम्। अव्यवच्छिन्नंहि स्मरण मष्टकादीनामष्टकाः कर्तव्या इति।"

अर्थात्—"वैदिक ग्रंथों की श्रुतियां प्रत्यक्ष बातके तात्पर्यार्थ को बतानेके उद्देश्यसे कही गई हैं। और गृह्यसूत्रादि स्मार्त ग्रंथों की श्रुतियां उन्हीं वैदिक बातों की स्मरण दिलाने वाली अनुमानरूप हैं। इसीलिये श्रुति संमत स्मृतियाँ धर्म की प्रमाण मानी जाती हैं। जैसा कि पौष, माघादि की अष्टमी

* हमारे युगपरिवर्तन नामक ग्रंथमें अनेकानेक प्रमाण देकर सिद्ध किया गया है कि कलियुगका प्रमाण सिर्फ १२०० वर्षका हैं। २८ वें युगके कलिका आरंभ शाके ६४६ में होकर शाके १८४६ से कृतयुगका आरंभ होगया है।

में जो अष्टका के मंत्र कहे गए हैं वह संवत्सरारंभकी द्योतक होनेसे प्राचीन कालमें उस समय संवत्सर का आरंभ होता था यह अविच्छिन्न [अखंडित] स्मरण अष्टका प्रयोग से अनुमित होता है । *

७. इससे यह बात स्पष्ट होती है कि जो जो बातें श्रुति सम्मत हैं वही हमारे धर्म की प्रमाण मूलक हैं । और जो बातें श्रुति सम्मत नहीं हैं वे केवल आपत्तिके समय कुछ कालतक उनका आचारण किये गया है तो भी वे धर्म प्रमाण मूलक नहीं हो सकती ? इसी प्रकार की गतकलियुगीन कुछ बाते हैं । जो कि अब कलियुग के बीत जानेपर हमारे धर्म प्रमाण मेसे वह सब निरर्थक होगई है । और श्रुतिस्मृति सम्मत बातें धर्म मूलक होने से हमारी अनुष्ठेय धर्मरूप हैं । और सदा रहेंगी ।

८. इस पुस्तक में वे सब बातें हम बता नहीं सकते । यहाँ तो केवल विवाह के संबंध की आदि से अंत तक यच्च यावत् कुल बातें दिखा देनी है । ताकि इसके पढनेसे पाठकों को मालूम हो जायगा कि आदर्श विवाह की आदर्शिता यही है कि जो इस पुस्तक में गृह्यसूत्र एवं श्रुति स्मृति पुराणादि कों के आधारसे स्पष्ट करके पृथक पृथक बतलादी गई हैं । और साथमें यह भी बताया गया है कि कलि युगीन पंडितोंने इस में कहां २ कैसी २ गडबड करदी है.

विवाहके योग्य कन्याकी अवस्था.

९. गृह्यसूत्र और स्मृति ग्रंथोंमें विवाह के योग्य कन्या की अवस्था बतलाई है किंतु उस अवस्था को श्रुति सम्मत बतलाने के लिये विहाह प्रयोगमें जो यह मंत्र वरके द्वारा कहला ये जाते हैं—

* श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनु तिष्ठन्हिमानवः ॥ इहकीर्तिमवाप्नोति प्रेत्यचानुत्तमं सुखम् ॥ श्रुति प्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै ॥ ८ ॥ मनुस्मृति [अ. २]

" सोमः प्रथमो विविदे गंधर्वो विविद उत्तरः ॥ तृतीयेऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥१॥ सोमो ददद्गंधर्वाय गंधर्वो ददद्ये ॥ रयिंच पुत्रां श्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ २ ॥ ऋ. सं. ८-३-२७

१०. इनका तथा निम्न लिखित स्मृति ग्रंथोक्त प्रमाणोंका

" व्यंजनेषुच जातेषु सोमो भुंक्ते च कन्यकाम् ॥
पयोधरेषु गंधर्वा रजस्यग्निः प्रतिष्ठितः ॥ १ ॥ "

अत्रिस्मृति [अ. ५ श्लो. ९]

तुलनात्मक पद्धतिसे मिलाकर अर्थ किया जाता है कि—" व्यंजन यानें केशरूएं आजांय यह कन्याके लिये सोमकी उपभोगिता दिखाती है। पयोधर याने कुच दिखाई देने लग जांय वह गंधर्व की और रजोवती ऋतुस्नाता हो जाय वह अग्नि (शुद्धता) की प्राप्ति बतलाती है। अर्थात् रोम, कुच, पुष्पसंभव हुए बादकी चौथी अवस्थामें उसका मनुष्य पति हो सकता है। क्योंकि उक्त श्रुति [मंत्र] में सोम= रोम की अवस्थासे गंधर्व= पयोधर अवस्था आगे इससे अग्नि= अग्रिम ऋतु की अवस्था आगे इससे मनुष्यज पतिकी उपभोग्य अवस्था क्रमसे बतलाए गई हैं। इससे सिद्ध होता है कि उक्त तीनं अवस्थाके कालके उपभोगके बाद मनुष्य पतिका उपभोग्य काल प्राप्त हो सकता है; यही कन्या का विवाह काल है।

११. इन्हीं बातोंको अन्यान्य स्मृतिकारोंने स्पष्ट करके बता दिया है कि—

सोमः शौचं ददौ तासां। गंधर्वाश्च तथांगिरः ॥
पावकः सर्व मेध्यंच। मेध्यं वै योषितः सदा ॥ १ ॥

अत्रिसंहिता (श्लो. १४०)

सोमः शौचं ददौ स्त्रीणां गंधर्वश्च शुभांगिरम् ॥
पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्या वै योषितो ह्यतः ॥ २१ ॥

(याज्ञवल्क्य स्मृति आचाराध्याये संस्कार प्रकरणम्)

सोमः शौचं ददो तासां । गंधर्वश्च शुभांगिरम् ॥
पावकः सर्व मेध्यत्वं । तस्मान्निष्कल्मशास्त्रियः ॥ २ ॥

दक्षस्मृति (श्लो. ३६

सोमस्तासा मदाच्छौचं । गंधर्वः शिक्षितांगिरम् ॥
अग्निश्च कार्य दक्षत्वं । तस्मारत्न समास्त्रियः ॥ ३ ॥

बृहत्संहिता (अ. १३)

अर्थात्–" सोमकालमें स्त्रियोंको पवित्राचार एवं शुद्धता के ज्ञानका लाभ, गंधर्व कालमें सुंदर भाषण का लाभ और पावक (अग्नि) कालमें सुस्वरूपताका लाभ प्राप्त होना है । इसप्रकार तीनूं अवस्था कालको भोगे बाद मनुष्य पतिके साथ सुखोपभोगका काल प्राप्त होता है । अर्थात् इस अवस्था के पहिले वह काल ही प्राप्त नहीं होता कि उसका पति उपभोग लेसके । इसलिये जयराम व गदाधर का बताया हुआ अर्थ गलत है । ऐसा सिद्ध होता है ।

१२. यहां और ऐसा दूसरा प्रश्न हो सकता है कि यह बातें तो गर्भाधान के समय की हो सकती हैं । क्यों कि संवर्त स्मृति (श्लोक६४–६७ में नीचे लिखे प्रकार दो तरहके दो प्रमाण लिखे हैं ।

रोमकालेतु संप्राप्ते सोमो भुंक्तेऽथ कन्यकाम् ॥
रजो दृष्ट्वातु गंधर्वाः कुचौ दृष्ट्वातु पावकः ॥ १ ॥
" अष्ट वर्षा भवेद्गौरी नव वर्षातु रोहिणी ॥
दश वर्षा भवेत्कन्या अतऊर्ध्वं रजस्वला ॥ २ ॥
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठोभ्राता तथैवच ॥
त्रयस्ते नरकंयान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलां ॥ ३ ॥
तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ॥
विवाहे ह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥ ४ ॥

१३. उसमें पहिला इस प्रकारके संवर्तस्मृतिमेंके श्लोकोंमेंसे पहिले श्लोकमें उक्त (कलम १२ देखो) अत्रिस्मृतिके कथनानुसार ही इसका अर्थ

है जैसाकी (१) रोम कालमें कन्या का वर उपभोग कर नही सकता क्यौंकि उसका सोम देवता उपभोग ले रहा है (२) रजो दर्शन के कालमें भी कर नहीं सकता क्यौकि इस समय गंधर्व देवता और (३) कुचदर्शनके कालमें भी कर नहीं सकता क्यौकि इस समय अग्निदेवता उसका उपभोग लेते हैं। अतएव इन तीन अवस्थाओंके उपरांत चौथी अवस्थामें उसका पति उपभोग ले सकता है इतनाही इस में लिखा होनेसे प्रश्नकर्ता के मतसे यह पहिला प्रमाण गर्भाधान कालका निदर्शक है क्यौंकि उसीसमय उसका उपभोग पति ले सकता है विवाह समय में नहीं ।

१४. और आगे के तीन श्लोक विवाह कालके अन्वर्थक हैं । क्यौंकि उनमें ८ वर्षकी गौरी, नववर्ष की रोहिणी, दश वर्षकी कन्या इस तरह कन्याके वर्षोंके अनुसार गौर्यादि कन्यान्त नाम कहकर दश वर्षके ऊपर उसकी रजस्वाला संज्ञा कही है और इस रजस्वाला का दान करनेसे माता, पिता व जेष्ट भ्राता यह तीनूं नरकमें जाते हैं इसलिये जहांतक कन्या ऋतुमती यानी दशवर्षकी नहीं होने पावे वहांतक उसका दान कर देना चाहिये वस्तुतः आठ वर्षकी कन्या का दान करना श्रेष्ट है ।

१५. इस प्रश्न का उत्तर थोडे ही शब्दों में येहै कि नीचे के तीन श्लोक संवर्त स्मृतिकार के कहे हुए नहीं है । किंतु कलियुग लगेबाद यवनों के अत्याचार के भय से उम्वताकर यह पीछे से डाले गये याने प्रक्षिप्त हैं। क्योंकि (१) सोम,(२) गंधर्व,(३) अग्नि इन तीनो देवता की दी हुई कन्या के साथ में मै (४) मनुष्य पति अब इसका स्विकार करता हूं । ऐसा वैदिक मंत्र विवाहके समय वर पढ़ता है। जबकि कन्या की रोम कुच और रज स्मृतिके कथनसे रोम कुच और यह कन्या की रज तीनो अवस्था उन के तीनो देवताओं के भुक्ति को दर्शाते हैं;तो इससे स्वयं सिद्ध होता है कि कुच इन तीनों अवस्थाके बाद ही उसका मनुष्य पति होसकता है अन्यथा नहीं । और गर्भाधान संस्कार अलग बात है उसके मंत्र भी अलग हैं । इस लिये उससे इस मंत्रका संबंधही नहीं है ।

१६. ग्रह्यसूत्रोंमें कन्या का विवाह काल ऋतुस्नाता हुए बादका बताया है। इसी से विवाह प्रयोगमें सप्तपदी हुए बाद लिखा गया है । कि त्रिरात्रमक्षा

रालवणशिनौ स्याताम् " " अधःशयी याता संवत्सरं " " **न मिथुन मुपेयातां द्वादशरात्र ँ षडरात्रं त्रिरात्रमन्ततः** "

अर्थात्—" [१] वरवधूने तीन दिनतक खारा खट्टा खाना नहीं चाहिये, [२] एक वर्ष तक पलंगपर नहीं सोना (३) और १२।६ या निदान ३ दिन तक मैथुन नहीं करना चाहिये "

१७. इस प्रकार के मैथुन के निषेधसे स्पष्ट सिद्ध हो जाता हैं कि यदि आठ वर्षकी कन्याका विवाह विवक्षित होता तो उक्त निषेध करने की आवश्यकता ही क्या थी ? क्योंकि " प्राप्तौ सत्यां निषेधः " जहां मैथुन की प्राप्ति होती हो तो ही यह निषेध युक्ति युक्त होता है अन्यथा नहीं। यही न्याय शास्त्र का अटल सिद्धान्त है।

१८. यदि मंत्रकार की विवक्षा [इच्छा] आठ वर्ष की विवाहि हुई से मैथुन न करले इस के लिये होती तो विवाह हुए बाद पांच सात वर्षोंका वह निषेध कर सकते थे। किंतु जबकि उन्हीं ने सोम गंधर्व और अग्नि की ऊढा का अर्थात् प्रौढा का विवाह स्पष्ट तया लिखा है तभी उनको उक्त दिनों तक मैथुन नहीं करे ऐसाही कहना पडा है। बर्सोंका नहीं।

१९. स्मृति ग्रंथों में भी जहां तहां कन्या का विवाह काल बताया है वहां वहां सोमगंधर्व व अग्नि की भुक्त यानी प्रौढा का ही विवाह कहा हं। इसलिये उपरोक्त हारीत स्मृति के प्रथम श्लोक मे रोम काल में सोमसे ऊढा, रजोवती होनेपर गंधर्व से ऊढा और कुंचवती होनेपर अग्नि से ऊढा कहते हुए उसकी प्रौढावस्थाको स्पष्ट कर दिया है। और स्मृति ग्रंथों में '**कन्या विंदेत नग्निकां**' '**अनग्निकां कन्यामुद्वहेत्.**' (अग्नि कां कन्यां न विंदेत नग्निकां = अनग्नि कां विन्देत। अनग्नि कां कन्या मुद्वहेत्) ऐसा जहां जहां लिखा है वहां तीनूं देवताओंके अंतिम देवता अग्नि के उपलक्ष्यमें कहा है अर्थात् जहांतक कुच पुष्प संभव उसके न हो जांय वहांतक उन देवतां एवं गंधर्व अग्निकी उपभुक्त वह नहीं हुई तो ऐसी के साथ विवाह करना निषेध है।

२०. मनुस्मृति मे तो इस बात को और भी स्पष्ट करके कह दिया है की—

" देव दत्तां पतिर्भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः ॥
तां साध्वीं बिभृयान्नित्यं देवानां प्रियमाचरन् ॥ ९५ ॥

[मानव धर्म शास्त्र अ. ९]

" सोमो ददादित्यादि मंत्रार्थ वादेभ्यो देवतानां दतृत्वं प्रतीयते। अथवा विवाहे देवता भार्या भवत्यत उच्यते देवदत्तामिति विन्देत नात्मन इच्छया। यथान्यद्रो हिरण्याद्यापण भूमौ लभ्यते नेयं भार्या। अत उच्यते नेच्छयात्मन इति। "　　[मेधातिथिः]

'देवदत्तां देवनाग्निना दत्ताम् । रयिंच पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमामिति मंत्र लिंगात्. "　　(सर्वज्ञनारायणः)

" देवैर्दत्ता भार्या तां पतिर्लभते। नतु स्वेच्छया "

(कुल्लूकः)

" मंत्रलिगात् भार्याया देवदत्तात्वं स्थापयन् उपस्थितायां श्रद्धातिशयं विधत्ते देवदत्तामिति। विवाहो जन्ममरणं यदा यत्रच येन चेति स्मारयन्नाह नेच्छयेति. '

(राघवानंदः)

" देवदत्तां सोम गंधर्वाग्निभिर्दत्ताम्

(नंदनः)

" देवदत्तां सोमादि भोग काले दत्तां अथवा
विवाहे देवदत्ता भार्या भवेति वा ' सोमो दद
द्गंधर्वाय गंधर्वो ददद्ग्नय इति श्रुतेः "

(रामचंद्रः)

२१. इस प्रकार मनुस्मृति के एवं " तुरियस्ते मनुष्यजः " इस विवाह कालिक मंत्रसे स्पष्ट तया सिद्ध होता है कि तीन देवतों की

ऊढा = प्रौढा * कन्या का ही (चतुर्थ) मनुष्यज पति होसकता है अन्यथा नहीं। इसप्रकारकी प्रौढ अवस्था आनेके बिनाही यदि कोई वर अपनी इच्छासे विवाह करलेवेतो उसका " नेच्छयात्मनः " † इसतरह मनुने निषेध कर दिया है। और मेधातिथिने अपनी टीकामें इसके अर्थ को स्पष्ट करके बता दिया है कि " बाजारमें जिस प्रकार गौ या सुवर्ण आदि वस्तु को कोई मनुष्य अपनी इच्छासे चाहे जब मोल लेकर प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार प्रौढा अवस्था के पहिले कन्या का पाणिगृहणादि विवाह विधि कर लेनेपर भी उसे भार्यात्व को प्राप्त नहीं कर सकता । क्यौंकि ऐसा करनेसे " सोमोददद्ग धर्वाय ० " यह विवाह का मुख्य मंत्र निरर्थक अतएव विधिभी निरर्थक हो जाति है। तब उसका भर्ताके साथ भार्यात्व अथवा मुख्य कालीन यज्ञ संयोगके बिना पति के साथ पत्नीत्व प्राप्त नहीं हो सकता।

२२. इस प्रकार के मानव धर्म शास्त्र के कथनसे निश्चित होता है कि कन्या को भार्यात्व प्राप्त होने के लिये कालही मुख्य माना है। और वह काल उसकी प्रौढावस्था अर्थात् मैथुन के लायक उसकी अवस्था है। शातातप ऋषिने इसी बातको स्पष्ट करते हुए कहा है कि —

" उद्वाहिताच या कन्या न संप्राप्ता च मैथुनम् ॥
भर्तारं पुनरभ्येति यथा कन्या तथैवसा ॥ ४४ ॥ "

शातातपस्मृति

अर्थात्— " विवाह की हुई कन्या मैथुन को प्राप्त न होती हुई योग्य कालमें भर्ता को पुनः प्राप्त करे। क्यों कि वह पहिले कन्या थी वैसी वह अब भी है। अतः सारांश ये है कि प्रौढा

---

* " रोम, रज, कुच दर्शन कालेभ्यः सोम, गंधर्व वान्हिभिरूहिता प्रौढा । [वह प्रापणें (भ्वा० उ० अ०) क्तः] वैवाह कालिक प्राप्त वयस्के त्यर्थः ।

† " पाणि गृहादि विधिना स्वीकृतामपि कन्यां पतिः उक्ताभिर्देवताभिरदत्तासद्भा-वात् भार्यां न विन्दतेत्यर्थः

वस्थाके बिना विवाह काल; काल के बिना मैथुन, मैथुन के बिना अकाल में किया हुआ विवाह अपूर्ण है। अतएव शातातप ऋषिने उसे रद्द मानकर प्रौढावस्था होने से गृह्यसूत्रोक्त मंत्रों (सोमो ददद्गंधर्वाय.) का एवं (न मिथुन मुपेयातां त्रिरात्र.... मंतत:) विधिका सार्थकत्व समझते हुए मैथुन काल प्राप्त होनेपर ही विवाह को पूर्णमाना गया है।

२४. जब इस प्रकार गृह्यसूत्रों के मंत्रों के यानी श्रुति प्रामाण्यसे और अत्रि, दक्ष, मनु आदि स्मृति के यानी धर्मशास्त्रके आधारसे उपयुक्त (कलम १४) संवर्त स्मृति के चार श्लोकोंमे से " रोम कालेत संप्राप्ते० " यह श्लोक जैसे स्वयंही श्रुति स्मृति सम्मत योग्य धर्म निदर्शक सिद्ध होता है। वैसे " अष्ट वर्षा भवे द्गौरी " आदि तीन श्लोक श्रुति स्मृति के अन्वर्थक नहीं।

इससे **यह** बात स्पष्ट होगई है कि सोम-गंधर्व-अग्नि के प्राप्त होने ही के पश्चात् मनुष्य पति हो सकता है ! अन्यथा नहीं !! क्यों कि सब स्मृतिकार इस बातको बार बार समझा रहे हैं।

सोम

१ स्त्रीमें जब व्यंजन इत्यादि बनाने और टापटीप से रहने का गुण हासिल हो जाय; तब निश्चय है कि, वह कन्या **सोमोपभोगी** होगई।

गंधर्व

२ प्रपंचमें आवश्यक ऐसा कुल शिक्षण—भाषामें माधुर्य—चतुराई प्राप्त होजाय तब नि:सन्देह है कि वह कन्या **गंधर्वोपभोगी** होगई।

अग्नि

३ गृहस्थी के कुल कामों में दक्ष—गर्भधारण करनेके योग्य पूर्ण अवस्थामें परिपक्व होजाय तब स्पष्ट सिद्ध है कि वह कन्या **अग्निकी उपभोगिता होगई।**

ऐसी उपरोक्त तीनो अवस्था प्राप्त हुई कन्या ही को वर के सुपुर्द करने का कन्या पिताको अधिकार है; अन्यथा नहीं। अज्ञान, अनजान और अनाथ बालिका का अज्ञान पन का फायदा लेकर उसकी इच्छा विरुद्ध; अपने ही मर्जीपर जबाबदारी लेकर विवाह करना मानो जान बूझकर गुन्हा और अपराध करना है।

२५. यहां वाचक शंका कर सकते हैं कि सोम गंधर्व-अग्निने इसका उपभोग लिया या नहीं आदि बातों का ठीक ठीक पता लगाने में समय भी बहोत लग जाय गा तिसपर भी निश्चयात्मक निर्णय लगाना बड़ी दिक्कत और उलझन का काम है। इतनाही नहीं तो असंभव सरीखा मालूम होता है। हाँ इस बातको हम तब मान सकते हैं, कि इसकी प्रत्यक्ष में विज्ञान शास्त्र के दृष्टिसे शारीरिक परिणाम स्त्रीके प्रकृति पर कोई प्रभाव या प्रत्यक्ष स्थित्यंतर दिख जाय; जिससे बिना किसी दिक्कत; हमारे को सोम-गंधर्व-अग्नि के लक्षण तूर्त समझमें आजाँय! तो तो इसका फैसला शीघ्र हो सकता है, अन्यथा नहीं।

२६. इस प्रश्नका उत्तर प्रथम ही आपको संवर्त ऋषि ने दे रखा है। वही ऊपर में आपको स्पष्ट करके दिखा दी है; जिसके सहारे सोम-गंधर्व-अग्नि आदि देवों के उपभोग होने की पूरी पूरी जाँच शारीरिक नियमों एवं प्राकृतिक लक्षणों से जाँचने पर आसानीसे प्राप्त होती है। जिसके सहारे मिनिटोंहीमें निर्णय लग सकता है।

" रोमकाल की प्राप्ति कन्या के लिए सोम का उपभोग दिखाती है। रजोवती होना गंधर्व का एवं कुच प्राप्ति अग्निका उपभोग दिखाती है " इससे तो वह बातें बिलकुल स्पष्ट होगई। स्त्री को जब रोमकाल (बगलमें और गुह्य स्थलपर केश) आजाँय, तब वह निश्चय ही सोम देवके उपभोग का साक्षात् नमूना है। वैसेही स्त्री जब रजोवती (ऋतु मति-ऋतु स्नाता) हो जाय, तब निश्चय ही वह गंधर्व के उपभोग की स्पष्ट तथा रसीद है। ठीक

अष्ट वर्षा भवेत् गौरी ... आदि श्लोक पीछेके प्रक्षिप्त हैं यह हमारे युगपरिवर्तन की पुस्तकमें सिद्ध किया है।

इसी तरह जब स्त्री को कुच प्राप्ती (सीना जोबन भरा उभर पड़ा) हो तब निश्चय ही वह (पावक) अग्नी के उपभोग की प्रत्यक्ष प्रतिमा है ।

२७. इस प्रकार प्राकृति परके परिवर्तनीय नियमों से सोम– गंधर्व– अग्नि इन तीनों देवता ओंका प्रत्यक्ष में निर्णय लगानेका वैज्ञानिक प्रकार ऋषि संवर्त ने अपनी स्मृतिमें दिखाया है । इससे बिलकुल स्पष्ट होगया कि ' कुच पुष्प संभवके पश्चात् ' लगभग १६ वर्ष के ऊपर कन्याका विवाहकाल सर्वत्र ऋषिने ठीक ठीक समझा दिया है ।

२८. यहां इस शंका को करनेका स्थल है कि संवर्त ऋषि उपरोक्त कथनमें केवल अवस्था विशेष दिखा रहे हैं, नकि विवाह काल ? किंतु यहां ऐसा नहीं है, इसका संबंध विधि विधान से है ।

२९. देखो जब विवाह प्रयोगमें वर वधूका परस्पर समीक्षण होता है। और जिन मंत्रों से विवाह प्रयोग सिद्ध होता है । उन मंत्रोंहीमें लिखा है कि:—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयोऽग्निष्टे पति स्तुरीयस्ते मनुष्यजः ।

अर्थात्:– प्रथम सोम [पवित्राचार] की प्राप्ति हो चुकी ? दूसरे में गंधर्व [शीक्षित मधुर वाणी] की प्राप्ति होगई ? तिसरेमें अग्नि रुप तेजस्विता [कार्यदक्षता] को क्या आपने प्राप्त कर लिया है ? जो चौथेमें अब मनुष्यज [मानव विज्ञान की कुल अवस्था प्राप्त होनेपर मनुष्य] पति को प्राप्त करने योग्य होगई हो ? *

उत्तरमें कन्या कहती है । हाँ– हाँ ! ! मुझे.

सोमो ददद् गंधर्वाय गन्धर्वो ददत् अग्नये ।
रयींच पुत्राश्चादादग्नि र्मह्यमथो इमाम् ।

* हमारा किया वेदार्थका दिग्दर्शन पुस्तक देखो.

अर्थात्:— सोमने गंधर्व के लिए सुपुर्द किया। वैसेही गंधर्वने अग्निके लिये सौंपा। उसी प्रकार परिपक्व हुई पुत्रोत्पादन करने के योग्य मै यह हुँ ?

फिर वर कहता है; ठीक है ! !

सानः पूषा शिवतमामैरय सान उरु उषति विहर। यस्या मुशन्तः प्रहराम शेपं यस्यामु कामा बहवो निविष्टया इति "

[पारस्कर गृ. सू. १६।४]

" जबकि आप इतने गुणशील की पोषण करने वाली और विहार करने योग्य हो ! तो मुझमें अनुरक्त होकर आनन्द भोगो। और काम की तृप्तिके लिए मेरे पास निवास करो

३०. कितना ओज भरा मंत्र, कितनी वैज्ञानिक प्रगल्भता;अक्षर अक्षर मे भरी हुई है ! हमारे कुल संस्कारों के मंत्र गंभीर भावसे ओतःप्रोत रहते हैं। ऐसा गंभीर वैज्ञानिक भावपूर्ण विस्तृत और प्रगल्भ सनातन धर्म का विस्तृत क्षेत्र; अरे रे कलियुगीन तत्वज्ञान रहित विद्वानों द्वारा कितना बुरी तरह सुकड़ाया गया ! ओह ? यह देख कर शोक और संताप दोनो होते हैं।

३१. सोचो ! समझो ! प्रयोगों में केवल तोता रटंत भाष। या स्तुति स्तोत्र ही हैं; यों न समझो। कृपाकर उसके खास खास भावों पर, मंत्रों के गांभीर्य पर, खियाल रखते रहो तो स्वयं आपको समझ जायगा कि इसका असली तत्व क्या है।

३२ क्योंकि यहां यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि वैदिक परंपरागत कन्याका पितृगृह निवास; वेदों तथा कुल स्मृतियों से सोलह वर्षके लगभग सिद्ध होता है। क्यों कि सोम- गंधर्व- अग्नि आदि के प्रयोग- मंत्र- विधि प्रमाण- आदिके देखने से इतना काल पितृगृह निवासमें परिमित है. और वह कन्या मंत्रोच्चार भी ठीक कर सकती है।

वैदिक जमानेसे चली आई हुई विवाह काल मर्यादा

आदर्श विवाह काल

सोलह वर्ष की कन्या — तीस वर्षका वर.

मध्यम विवाह काल

चौदह वर्ष की कन्या — चौवीस वर्षका वर.

कनिष्ट विवाह काल

बारह वर्ष की कन्या — अठारह वर्षका वर.

३३. इसमें सोलह वर्ष वाली कन्याही विवाह काल के लिये आदर्श मानी है। अन्यथा छोटी उमर वाली कन्या का; कन्या पिताको वैदिक सनातन धर्म और शास्त्र के मानसे कोई आधार या अधिकार नहीं है कि उसका विवाह करदे. *

---

* त्रिंशत् वर्षोद्वहेत कन्यां हृद्यां षोडष वार्षिकीं
(मनु ९.९४)

त्रिंशद्वर्षः षोडषाब्दां भार्यां विंदेत नग्निकाम्
भारत.

हमारा बनाया ' विवाह मीमांसा ' पुस्तक देखो।

कन्या पिताका कर्तव्य

३४. जब यह बात हम निर्विवाद समझ चुके कि प्राचीन कालमें प्रौढ़ विवाह की प्रथा थी। तो अब हमें यह देखना भी परमावश्यक होगया है कि कन्या के प्रति पिता का क्या कर्तव्य था ? इस और जब हम हमारा ध्यान पहुँचाते हैं तब पता चलता हैं कि स्वयं कन्या को अपने लिये पतिका चुनाव करने का अधिकार था। देखो देवहुतीनें-कर्दमको, सावित्रीने सत्यावानको, दमयंतीनें नलको, द्रौपदीनें अर्जुनको, कुन्तीनें पाण्डुको, रुक्मिणीनें कृष्णको, सीतानें रामको कहां तक कहुं इसीका कही बड़ा पोथा न होजाय इसभय से अधिक नहीं बढ़ाता किंतु यहां इतनाही कहना पर्याप्त है कि जिसका संबंध जिस पतिसे होने वाला है वह मनुष्य योग्य-अयोग्य-मूर्ख-बुद्धिमान, विचारवान, चतुर, सुशील, दयवान, निर्दई, कठोर, कपटी, छल, चोर, ठग, दुराचारी-सदाचारी आदि कौन से गुणों में निष्णात है यह पहचान ने का सुयोग उस कन्याको दिया जाताथा यह वेदोंके प्रमाणोंसे सिद्ध होता है।

कन्या पिताका कर्तव्य.

३५ जब कन्याकी अवस्था अपना लाभ, हानी, यश अपयश, सुख, दुःख पूर्ण तरह से समझने लगे अर्थात् जब उसकी पूरी पूरी सज्ञानावस्था प्राप्त हो जाय तब माता पिताओंका पवित्र फर्ज है कि कन्या कहे उस प्रकार उचित व्यवस्था सौलत आदि जो कन्या मांगे उसे उसकी इच्छानुकूल देना चाहिये। देखो अथर्वण वेदकी आज्ञा है कि—

उपवर कन्याकी वर चुनाव-चेष्टा।

इह प्रियं प्रजियै ते समृध्यता मस्मिं गृहे
गार्हपत्याय जागृही। एना पत्या तन्वं,
सं स्पृशस्वाथ जीर्विर्विदथमा वदासि

(अथर्वण वेद १४ कां १. १. ३०)

भावार्थः—यह (कन्या) अति प्रिय ता से इस घरमें पाली हुई है उसकी हर प्रकार से समृद्धि करने के लिये हर समय घर वालों को सचेत रहना चाहिये। और जिसको शारीरिक प्रक्रिया से और अन्य भाषणसे जीवन आधार रूप कहती हो........उसेही कन्या देना चाहिये।

३६. यहां कोई शंका कर सकता है कि वर–वधू आदिका तो कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है; फिर हम कैसे मानें। ठीक है। अब इससे भी स्पष्ट तया अथर्वण वेदकी आज्ञा दिखाते हैं।

सोमो वधू युरभव दश्विना स्तामुभा वरा
सूर्या यत पत्ये शंसंतीं मनसा सवितादवात् ॥ ९ ॥

(अथर्वण. कां. १४. १. १. पृ. २९३.)

३७. जब वधूमें सुशिक्षिता पन (सोम) आता है वही उसका वर है। फिर वह जिस पति के लिये सलाह देता है; फिर ऐसे मनःपूर्वक पति को सविता देव प्राप्त कराते हैं

३८. इससे स्पष्ट होता है की अपनी कन्या किससे पति की इच्छा करती है; इसको पूर्ण तया समझ लेते थे। और ऐसेही पुरुष के सुपुर्द; कन्या के करनेमें, कन्या की इच्छा तृप्त करने के पुण्यके भागीदार होतेथे यही उनका पवित्र कर्तव्य था।

३९. एकाएकी किसी से भी कहना सुनना बहुत कठिन साहस करना है। तो भी वह किस तरहकी बातें करते थे यह अथर्वण वेदमें कहे हुए एक प्रसंग को देखने से पता चलता है।

वधुकी वरप्रति सन्देश चेष्टा।

संभल नामक व्यक्ति से कुछ सन्देश अपने प्रिय वर का पूँछाती है:—

युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्ता वृतोद्येषु।
ब्रह्मण स्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाच मेताम् ॥

(अथर्वण १४ कांड १. १. ३१.)

" क्या ? आपके योग्य कोई सुभगा प्राप्त करने का आपका कोई उद्देश है ? मेरी अंत:करण से आपहीमें अभिरुचि है । हे विचार वान संभल यह मेरी वाक् यांचा कहोतो सही "

४०. इसमें कितनी मार्मिकता है । इस सन्देशको लेकर जब वह आशा जनक पत्युत्तर को प्राप्त होता हुआ लौटता है । तब उसके आशातीत उत्तर को प्राप्त होते ही अपने सौभाग्य को धन्य समझती है । क्यों कि पति उसकी इच्छासे अनुव्रत जो हुआ है; इस स्वादके सामने अमृत का स्वाद भी क्या चीज है । "

" जैसा सिन्धु नदी का साम्राज्य सूख नहीं सकता ठीक उसी तरह तुम अखंड सम्राज्य प्राप्त करोगी " यह उसे विश्वास हो जाता है ।

वधुद्वारा श्वसुर और देवर इत्यादि की राय.

४१. जब गुप्त सन्देश वर वधु का पोंच गया कि पश्चात् श्वसुर और देवर आदि कों से, राय ली जाती थी । और वह जाने वाला व्यक्ति प्राय: बुद्धिमान ही भेजा जाता था । क्यों कि उंचसे उंचा श्वसुर और नीचेसे नीचा देवर इन सबोंको बुद्धिमानी से समझाने के; लिये बुद्धिमान आदमी की जरूर लगती थी इसीसे चतुरके द्वारा राय बुलाई जाती थी । या अन्य जातिका विद्वान पुरुष भी जा सकता था उनके जरियेसे जब समुचित राय प्राप्त हो जातीथी । साथमें पहिले पति कि सम्मति होनेसे वह बात पूर्ण सबल हो जाती थी । अर्थात् पतिकी, श्वसुर की, जेष्ठ की, देवर की सबों की सम्मति प्राप्त होती थी । पश्चात् अन्य कार्य होते थे

आशा साना सामनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।
पत्यु रनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥ ४२ ॥
यथा सिंधुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।
एवात्वं साम्राज्ञे धि पत्युरस्तं परेत्य ॥ ४३ ॥
(अथर्वण. कां. १४. अ. १ सूत्र)

आस्यै ब्राह्मणा: स्नपनी र्हरंत्ववीरघ्नी रुदजन्त्वाप: ॥
अर्यम्णो अग्नि पर्येतु पूषन् प्रतीक्षते श्वसुरो देवरश्च ॥ ३९ ॥
(अथर्वण. कां. १४ अ. १ सू १)

४२. "जब यह बात तय होजाय की वधुवर का प्रेम संलग्न होता है। तब वधु पिता और वर पिता या पितृ तुल्य अधिकारी इन का पवित्र कर्तव्य है कि इन दोनों वधु– वर के सम्भाषणादि होने में समुचित सुविधा प्रदान करे। क्यों कि वधु वर के संभाषण में. प्रश्न क्रीडा का खासा आनंद आता है। उलझन भरे पेंचीले प्रश्न और उनके उत्तर इससे उनकी आत्माको विश्वास हो जाता है. कि यह मनुष्य किस पातात्र का है।"

विवाह पूर्व वधु वर का मार्मिक संभाषण।

४३. और सचमें देखा जाय तो यह बातभी सच है कि विवाह वर वधू का है। न वर पिता या वधु पिताका। क्यों कि जिससे जिस की प्राप्ति होगीं उसका विचार उसको खुद को करना चाहिये।

४४. देखो अथर्व संहिता की आज्ञा में साफ लिखा है कि* "जिस स्त्री की जिज्ञासा जिस पति की भार्या बनने की होती है; उसको उसी की इच्छाऽनुसार पति चुनाव के लिये विचरने देवो। साथमें आवश्यकता होने पर सखियाँ भी लेजाने देवो। इस को किसी भी विद्वानने रोकना नहीं चाहिए। क्यों कि वह अपने तुल्य रुप और कुलको खुद खोज लेगी." इस लिये उसके उद्योग में उसे मदत देना यह तुमारा आद्य कर्तव्य है।

वधुने सखी सहित रुपकुल की देख भाल करना

* पूर्वा परं चरतो माय येतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोर्णवम्।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतु रन्यो विदधज्जायसे नवः ॥ २३ ॥

तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभया मसि ॥ ५५ ॥

इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरंतीम्
तामन्वर्तिष्ये सखिभि र्नवग्वैः क इमान् विद्वान् विचर्त पाशान् ॥५६॥

अहं विष्यामि मयि रुपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ॥ ५७ ॥
(अथर्व संहिता कां. १४ अ. १ सू. १५५-५६)

४५. जब इस बात को वधु स्थिर करलेती थी कि * अमुक पति के प्रति मेरी पूर्ण जिज्ञासा है; तब उसके पालक उस बातको पूरी समझ लेते थे। पश्चात् ज्ञाति के लोग इस आसक्त हुई हुइ कन्या को सर्व श्रेष्ठ ऐसे प्रियतम वरके सुपुर्द करने को अपनी सम्मति पूर्ण तया देते थे। ऐसा वर्णन अथर्वण संहितामें मिलता है।

ज्ञाति गणों की ओरसे वधुको पति बंधन

ऋषि, गण और गोत्र

ऋषि १ मुख्य ऋषि सात हैं क्यों कि हमारे यहां प्राचीन वैदिक संकृति से सप्तऋषि यह मुख्य ऋषि माने गये हैं। और आजतक वही माने जारहे हैं।

विश्वामित्रो जमदग्नि र्भरद्वाजोथ गौतमः।
अत्रि र्वसिष्टः कश्यप इत्यैते सप्त ऋषयः

१ विश्वामित्र, २ जमदग्नि ३ भरद्वाज ४ गौतम ५ अत्रि ६ वसिष्ठ ७ कश्यप यह सप्त ऋषि हैं। और आठवा अगस्य ऋषि इनकी ऋषि संज्ञा है यह सप्तऋषि कहलाते हैं।

प्रवर २ ऋषि के पिता, पितामह, प्रपितामह यही प्रवर हैं। क्यों कि प्रवर वरण के समय* भी प्रथम पिता आता है पश्चात् पुत्र तदनंतर पौत्र आता है। यों शतपथ ब्राह्मण में लिखा है। इसे त्रि प्रवर भी कहते हैं।

---

* **नील लोहितं भवति कृत्या सक्ति र्व्यज्यते।**
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पति बंधेषु बध्यते
अथर्व संहिता १४ कां १. १.

* **गोत्र भूतस्य पितृ पितामह प्रपितामहाः एव प्रवराः पित्रै वाग्रेथ पुत्रोऽथ पौत्र इति** [शतपथ ब्रा.]

प्रवर भेद अर्थात गण ।

३ प्रवर भेद कुल में ४९ कहे हैं। उनका खुलासा निम्नलिखित प्रकारसे है—**भृगुगण ७, आंगिरस गण १७, अत्रिगण ४, विश्वामित्र गण १०, कश्यप गण ३, वशिष्ट गण ४, अगस्ति गण ४, यह कुल गण मिलानेपर ठीक ४९ गण होते हैं**। इन एक एक गणों के अन्दर अर्थात् उपरोक्त गणों के अंतर्गतमें गोत्र बहुतसे भरे हैं। किंतु उनके प्रवर एक होनेसे वह गोत्रगण समझा जाता है। इस प्रकार ४९ गोत्रगण हैं। और वही ४९ गोत्रगण बौधायन ने ठीक समझा दिये हैं। यानी इन ४९ गोत्र गणों मे तमाम गोत्र बंधे हुए हैं।

गोत्र यानीं क्या ?

४ विश्वामित्र, जगदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ट, कश्यप यह सात ऋषि और आठवाँ अगस्त्य इन ऋषियों से उत्पन्न हुए जो पुत्र पौत्रादि, स्वजातीय गण अर्थात वंशका जन समूह में (क्यों कि उक्त सप्त ऋषि से उत्पन्न हुए पुत्र पौत्रादि) हजारों ऋषि उत्पन्न हुए; उन उत्पन्न हुए ऋषियोंने जो अपना अपना नाम ऋषिकी आद्य संतानों द्वारा जो व्यक्त किया है; वही गोत्र हैं।

गोत्र किसे कहते है ।

५ अगस्त्य सहित ऊपर दिखाए हुए × सप्त ऋषि उनसे जो उत्पन्न हुए वंश वे पुरुष निज निजके जो जो नाम से प्रसिद्ध हुए हैं; वे सब गोत्र कहलाते हैं।

गोत्र कितने हैं ।

६ गौत्रों की संख्या हजारों लाखों * अर्बोतक है। किन्तु इतने अर्बोतक के गोत्र है तो भी उन गोत्रोंका बंधन प्रवर गणों में कुल ४९ गणों में आता है। और वैसेही गणों का बंधन सप्त ऋषियों से हो जाता है। सारांश में इनका अनुक्रम से विस्तार यही है †

× **सप्तानां ऋषिणां अगस्त्याष्टमानां यत दंपत्यं तद् गोत्रम् ।**
प्रवर मंजर्या बौधायनः ।

* **गोत्राणांतु सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानिच**
ऊन पंचाशदेवैषां प्रवरा ऋषि दर्शनात्
प्रवर मंजर्या बौधायनः ।

† विशेष खुलासा हमारी बनाई ' गोत्र प्रवर मीमांसा ' में मिलेगा ।

विवाहमें गण और गोत्र विचार.

असपिंडाच या मातुः असगोत्राच या पितुः ॥
सा विवाह्या द्विजातीनां दार कर्मणि मैथुने ॥ ३७ ॥

(लघु शातातप - ३७)

अर्थात्:— " जिस कन्या को ब्याहनी है उस की माता यदि निजके सापिंडय में अड़ती नहीं है; और जिसका पिता निजके गोत्र से भिन्न है;तो वह गृह कृत्य एवं दार कर्म – मैथुन में द्विजातियों से विवाहमे योग्य है "

७ अब जब यह हमने दिखा दिये की गोत्र लाखो और अरबों हैं तब उसमें हमे देखने योग्य बात सिर्फ इतनी ही है कि जिस वर वधू का प्रेम परिक्षण करना है वह सगोत्रा तो नहीं है; अतः यहां ऊपरोक्त प्रकार से उसकी जांच करके कार्य करना चाहिये ।

८ क्यों कि यह अबाधित सिद्धान्त है कि सगोत्रा से विवाह न करे अतः यह सर्व थैव त्याज्य है । क्यों कि श्रुति और स्मृति वचनों से यह त्यागनेके लिये जगे जगे कहा गया है । इसके लिये सब से प्रथम गोत्र इत्यादिका विचार कर; पश्चात् वैवाहिक प्रेम परिक्षण आदिकी सुसंधि दी जाती थी । ठीक इसी प्रकार अबभी प्रत्येक दम्पति का आद्य कर्तव्य है कि गोत्रकी समुचित छान बीन प्रथम ही कर लेना चाहिये; पश्चात वैवाहिक समस्याकी बात ।

वधुवर मेलन.

९ वधु और वरका प्रेम (Love) जीवन भरमें किस प्रकार रहेगा । यह एक प्रश्न बड़ा आवश्यक है । क्यों कि हम प्रथम कह आये हैं कि विवाह संबंध में वधुवर के आपस में प्रेम परिक्षण होजाता है । किंतु उसमें यह प्रश्न भी आवश्यक है कि जीवन भर इनकी परस्पर में मैत्री कैसी रहेगी ?

१० क्योंकि परस्पर की मैत्री का प्रश्न आज युरोप में भी खड़ा हो रहा है । और उन लोगोंने इसका निर्णय लगाने के लिये कई संस्था और सोसायटियाँ स्थापित करी हैं । * कोई बालों (केशों) की चिकित्सा करता हुवा प्रेम मैत्री का निर्णय देता है, तो कोई वधु–वर के शरीरसे रक्त की बून्द निकाल कर उनके अन्यान्य वैज्ञानिक प्रकारों से कणों का आकर्षण प्रत्यक्ष देखकर मैत्री निर्णय कर, अपना मत मेलन संबंध में देता है । इसीसे वहां के लोग सैकडों ही नहीं किंतु हजारों और लाखों रुपये इस बातके लिये चूरा कर रहे हैं कि मेलन मैत्री जाँचने का खास प्रत्यक्ष नमूना हमारे हात लगे । फिर वह किसी तरीकेका हो ।

११ किंतु हमारे भारत वर्ष में ऐसे जटिल प्रश्नको तत्व ज्ञानी ऋषियोंनें प्रथम ही हलकरनेका अद्भुत तरीका निकाल रखा है । जिसके बलपर झट्से शीघ्र ही मालूम होसकता है; कि इन दंपति का प्रेम अखंडित कायम रहेगा या नहीं ? इसकी जाँच नक्षत्र से की जाती है और इसे ' घटित मेलन ' कहते हैं

वधु-वर का घटित मेलन ।

१२ आज जिस तरह हम लोग काल ज्ञानमें घंटा मिनिट सटसे जान जाते हैं ठीक् इसी प्रकार प्राचीन कालमें काल गणना का प्रकार (सूक्ष्म) घटि-पल विपल प्रति विपल आदि से होताथा । अत: जन्म समय की घटि से वधु का जन्म नक्षत्र एवं वर

* चित्रमयजगत ' हिन्दी ' सन १९१६ मार्चका अंक देखो

की ओर की घटि पलों से वर का नक्षत्र और उनके चरण इत्यादि जान जाते थे। इन वधुवर के दोनोंके परस्पर नक्षत्र जानने पर इनकी मैत्री कैसी अखंडित कायम रहेगी इसका निर्णय निकालनेका तरीका ज्योतिष शास्त्र में जगे जगे बताया है। ×

१३ आधुनिक पाश्चिमात्य विद्या से चका चौंध हुए कुछ विद्वान् **सट** से यह शंका कर बैठते हैं कि, घटित मेलन का प्रकार केवल **थोतांड** है! इसमें क्या जान है? क्या पंडितों के यहां विवाह पश्चात् विधवा यें नहीं होती? फिर व्यर्थ की चिकलस क्यों?

१४ ठीक है। यहां शंका करना कोई दोष नहीं। क्यों कि बिना शंका किये समाधान हो भी कैसे सकता है। अतः उपरोक्त बात को हल करने के लिये निम्न लिखित मुद्दे खड़े होते हैं।

१ नक्षत्रों से और मनुष्यों से ऐसा कौनसा संबंध है?

२ वह किस काममे लाया जाता है?

३ उसका प्रकृतिपर क्या परिणाम होता है? और वह प्रत्यक्ष दिखाता है क्या?

४ उसे हम क्यों मानें उससे हमें क्या लाभ?

१५ नक्षात्रों और मनुष्यों से हमारा इतना निकट संबंध है कि प्रतिक्षण में प्रत्येक बात बिना नक्षत्र के नहीं होती। जैसे बीजकी बुआई किसी भी किसान को मनमाने नक्षत्र में करते नहीं आती। और यदि किया भी तो फलद्रूप नहीं होती, यह प्रत्यक्ष है उसी प्रकार धान्य की कटाई आदि कुल किसानी काम नक्षत्रही के महत्व को लेकर हैं।+

१६ यह हमने सिद्ध कर दिया है कि जिस प्रकार हम आज सत्ताईस नक्षत्र आकाश में मोजते हैं ठीक उसी प्रकार वैदिक जमाने में यही नक्षत्र

+ इस विषयकी आज्ञा-गर्ग-च्यवन-नारद - वसिष्ठ आदि कुल ऋषियों ने दी है।

देवता नामसे संबोधित होते थे; और इनकी गिनती देवता के नामों से होती थी। × अश्विनौ=अश्विनी, यम=भरणी, अग्नि=कृतिका, प्रजापति=रोहिणी........ आदि दैवत्य क्रम* वैदिक समय में था वही अव्याहत अभीतक चला आरहा है।

१७ चला आरहा है यह कहने का मतलब यह है कि वैदिक प्रयोगों में जगह जगह इन्ही देवताओं का आवाहन—पूजा—और हवन इत्यादि बार बार लिखा और समझाया है। और वही आजतक चला आरहा है, इतना ही नहीं थोड़ेमें हमारा इतना ही कहना पर्याप्त है कि विवाह प्रयोग में जो हवन आव्हाहन—पूजन इत्यादि होता है सो देवता यही हैं। और मंत्रों में भी इन्हीं का नाम बार बार आया है। अतः इन्ही देवता ओं की प्रेरणासे हमारे में बुद्धि, सामर्थ्य, बल, शक्ति, आदि प्राप्त होती हैं।

नक्षत्रों का मनुष्योंकी विचार शक्तींपर कबजा।

१८ अब जब इस प्रकार उक्त दैवत् का महात्म्य जो समस्त जगत् को बंधन कारक है। तब मनुष्यों को है कि नहीं यह शंका ही नहीं रहती। क्यों कि जगत में पैदा होने वाले ऋतु—अयन समुद्रकी भरती ओहटी, वनस्पतीकी प्ररोहता—धान्यकी उपज—कहां तक कहें खान – पान - जल, वायू इनका आगम निर्गम सब इन्ही के बल पर निर्भर है।

१९ इसलिये पहिले दिखाये मुद्दे हल किए जाते हैं कि: —

१. नक्षत्रों एवं दैवत्यों से केवल मुनुष्यों ही का नहीं किंतु समस्त जगत् के सृष्ट पदार्थ और सब प्राणी मात्र से घनिष्ट संबंध है।

+ 'नक्षत्र विज्ञान' और ग्रहों के प्रत्यक्ष चमत्कार' नामक हमारी बनाई पुस्तकों में गहरा खुलासा मिलेगा।

× देखो हमारा बनाया 'वेदार्थ का दिग्दर्शन' नामक पुस्तक।

* दैवतक्रम का अधिक खुलासा आगे विवाह प्रयोग में देखो।

२. और वह प्राणी मात्र के विचार-बुद्धि सामर्थ्य आदिके काम में आता है। और उन्ही के प्रभाव से उनमें रद बदली हुवा करती है!

३. उसका जैसे समष्टि और व्यष्टि रूप समस्त जगत पर परिणाम निश्चित है; और वह ऋतुओंके प्राकृतिक लक्षणों में प्रत्यक्ष दिखता है?

४. तब ऐसे दैवत क्रम से कहे जाने वाली बातका लाभ नहीं लेना तो फिर किसका लेना। इस लिये इसकी बातें अवश्य देखनी चाहिये।

२० अब जब हम उक्त बातोंसे नक्षत्रों के महत्व को जान गये तब उस उपरोक्त शंकाका समाधान ठीक सिर होजाता है, कि **घटित- मेलन** यह एक थोतांड नही है। अतःयह तो वेद कालीन प्राचीन महर्षियों का अतीन्द्रिय ज्ञान से संग्रहित किया हुवा अमौलिक वधु वर के परस्पर मैत्री समझने का अद्भुत तरीका है। और इसीसे गर्ग- च्यवन- वासिष्ट नारद आदि कई महर्षियों की इसको आज्ञा है।

२१ उक्त घटित मेलन में आठ बातों की जाँच की जाती है। जिसका ब्योरा इस प्रकार है। वर्ण- वश्य- तारा- योनी- ग्रह- गण कूट- नाड़ी। इसके उन लोगों ने अनुक्रमसे अङ्कदेने का भी कहा है। अर्थात् वर्णका एक, वश्य के दो, तारा के तीन योनी के चार ग्रह मैत्री के पांच, गणके छे, कूट के सात और नाडी के आठ अंक मिलते हैं। इस प्रकार कुल गणोंका ३६ जोड़ होता है।

वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रह मैत्रिकम्।
गण मैत्र भकूटंच नाड़ी चैते गुणा धिकाः॥

(मुहूर्त चिंतामणि विवाह प्र. २१)

नाड़ी भेदे गुणा अष्टौ सप्त सद्राशि कूटके। षट्गुणा गण मैत्र्योच सौहार्दे पंच खेटयो। योनिमैत्र्यांच चत्वारः स्त्र्ययः तारा बले गुणः। वश्यत्वे द्वौ गुणौ प्रोक्तौ वर्ण एक प्रकीर्तितः॥

(दैवज्ञ मनोहर)

वर्ण

२२ व्यवहार में वर्ण उत्पत्ति सिद्ध माना है। तोभी स्वभाव गुण से उसमें भिन्नता दिखती है। जैसे ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न हुवा है; सही किंतु उसमें गुण क्षात्र वृत्तिके रहना। या वैश्य वृत्तिके व्यवसाई रहना अथवा नौकरी दास्यत्व आदि शूद्र वृत्ति के रहना सहज है। इसी प्रकार वधुवर के वर्णात्मक गुण जाँचने का यह पहिला प्रकार है और यह अपना एक अंक प्रदान करता है।

वश्य

२३ जगत् के प्रत्येक प्राणी एक के अनुकूल और दुसरे के प्रतिकूल रहा करते हैं। जैसे पानीकी मछली, मनुष्य के वश में है। किंतु मछली के वश मनुष्य नहीं। वैसेही जितना सिंह मनुष्य को पूरा घातक है उतना मनुष्य सिंह को नहीं आदि कई तत्वों की उत्पत्ति सिद्ध जाँच करने का यह दुसरा प्रकार है। इसमें वधुवर के अनुकूल वशता रही तो यह दो अंक प्रदान करता है।

तारा

२४ वधु नक्षत्र से वर नक्षत्र तकके अंक और वर नक्षत्र से वधु नक्षत्र तकके अंक नवसे विभागित करते हुए मोजनेपर इसके गुण प्राप्त होते हैं। तारा नक्षत्र को कहते हैं। इसका संबंध ज्योतिष से पूर्ण तया है। क्योंकि ज्योतिष के प्रकार दो हैं, पहिला स्थिर और दूसरा चल।

२५ आकाशमें जो अनंत तारा गण दिखते हैं, वे स्थिर और भौम चन्द्रादि ग्रह चल हैं। तारा गणों को यद्यपि निज गती है। तो भी वह बहुत कम है। अर्थात् लाखों वर्षों में किंचित फरक पड़ता है। किंतु आकाश में इनका स्थल परिवर्तन नहीं होता।

२६ वेदों में आकाशको समुद्र कहा है * और इतने बड़े अफाट सागरमें × पार कराने वाली अर्थात् तराने वाली तारू (नौका) रूप कोई सहारा है तो यही एक तार का के अन्दर का तारकत्व है। इस लिये जो कोई भी इसका यजन करते हैं * वह उसी पद पर प्राप्त होते हैं। अर्थात् पक्के

---

* द्यौः समुद्र समं सरः (यजुर्वेद २३-४८)

× सलिलं वा इदमन्तरासीत् यत् अतरन् तत् तारकाणाम् तारकत्वम्। (तै ब्रा. १-५-२)

होते हैं। हलते नहीं यही नक्षत्र का नक्षत्रत्व है। इसीसे वधुवर के गुण प्राप्ति में तारा को महत्व दिया गया यह तिसरा प्रकार है। यह अपने गुणके तीन अंक प्रदान करता है।

योनी

२७ किसी भी रुप को संग्राहित कर घटक रुपमें लाने की प्रक्रिया को योनी कहा है। अतः संग्रह करने की प्रक्रिया किसकी श्वानवत् किसीकी हस्तिवत व किसी की गौवत् है या कैसी है। यों समझने का तरीका नक्षत्रों ही से रखा है। इसीसे वधुवरकी गुण प्राप्ति में इसको महत्व दिया है यह चौथा प्रकार है। यह अपने गुणके चार अङ्क प्रदान करता है।

ग्रह मैत्री

२८ वधुका नक्षत्र जिस राशिमेंका है उस राशीका जो स्वामी उसकी परस्पर में मैत्री वरकी राशि स्वामीसे कैसी रहेगी; यह राशि स्वामी सेही जाँचा जाता है। यह पांचवा प्रकार है यह भी अपने समतुल्यतामें गुणके पांच अंक प्रदान करता है।

गण

२९ गण वंशको कहते हैं। श्रेष्ठ पुरुषके वंशमें क्रूर प्रकृति गुणयुक्त बालक होना, क्रूर वालेके प्रकृति यहां सद्गुण युक्त बालक होना, ऐसा परिवर्तन रहता होता है। क्यों कि गुण के प्रकार तीन प्रशस्त है सत्व–रज–तम ऐसे तीन गुण जगत् मान्य है। उसमे ऋषियोंनें:–

गुणो त्रिविधः

सत्वगुण	रजोगुण	तमोगुण
देवगण	मनुष्यगण	राक्षसगण
श्रेष्ठस्वभाव	समानस्वभाव	उग्रस्वभाव

---

* यो वा इह यजते अमुं सलोकं नक्षते तत् नक्षत्राणाम् नक्षत्रत्वम्
(तै ब्रा. १-५-२)

संग्रही करण प्रकारः स योनिः (चुलेट कृत यज्ञविज्ञान)

देवगण=मनुष्यगण=राक्षसगण ऐसे तीन गण मुकर करके गणों के गुणों को देखने का तरीका खोजा है। यह अपने गुणों के छे अंक प्रदान करता है

भकूट

३० इसमें वधु राशी से वर राशीतक और वर राशि से वधु राशितक की कुल राशियां मोजी जाती है। इसमें राशियोंसे राशियां मोजी जाती है। इसमें भी सूक्ष्म ऐसा एक रज्जू कूट भी मोजा जाता है। यह राशि से राशि नापने का प्रकार ऋषियोंने कर रखा है इस को भकूट कहते हैं। यह सात गुण प्रदान करता है।

नाड़ी

३१ यह नाड़ी नक्षत्रोंसे मोजी जाती है। इसमें शारीरिक विज्ञान से दिव्य दृष्टि द्वारा ऋषियोने फल सिद्ध किए हैं। इसके आदि–मध्य–अंत्य ऐसे तीन भेद बनाए हैं सो यह आयुर्वेद से पूर्ण संबंध रखने वाली बात है। अत: यह भी एक अद्वितीय खोज है। इस में वधु वर के परस्पर के, नक्षत्र से नापा जाता है। यह असमान नाड़ी रहने पर आठ गुण प्रदान करती है। *

३२ उक्त आठ प्रकार के गुण शोधन करने का प्रकार दिखाया है। इन आठों प्रकार के गुण के अंकों का जोड़ ३६ होता है। इसमें भी वधु-वर के परस्पर में गुण बरोबर न मिलने से घटाये जाते हैं। किंतु कितने भी कम हो कममें कम आधे गुण अर्थात् अठारह गुण के ऊपर गुण के अंक मिल जाँय तो ज्योतिष शास्त्र में विवाह शुभ कारक बताया है।

मेलन प्रकार का दुरुपयोग.

३३ कइ लोग उक्त मेलन प्रकार में इस के सच्चे महत्व को न समझ कर इसमें कई प्रकार की गड़बड़ी पैदा कर देते हैं; क्यों कि व्यवसाई से व्यवसाई और धनिको से धनिक वधु-वर के पालकों का जहां सामना हो जाता है; वहां इस के नियमो में बड़ी खींच तान होती है। कोई एक मेक की पत्रिका

* गुण लानेकी पद्धति कुल ज्योतिष के ग्रंथोंमे कही गई हैं,

शोध लगाने की खटपट करता है, तो कोई लड़का लड़की को छोटा बड़ा दिखाने के लिये पत्रिका की रद्‌बदली करानेकी कोशीस करता है; तो कोई पत्रिका को उथल पुथल कर देता है। कोई पंडितों के पास जाकर १०।५ वर्ष आगे पीछे पत्रिका को सरकानेकी कोशीस करता है। कहने का तात्पर्य ये हैं कि पवित्र ऐसे कृत्यमें हात चालाखी का नतीजा; दुष्परिणाम रुप होता हुवा प्राप्त होता है अतः इसमें ऐसे जगह इसका सदुपयोग करना चाहिये। ताकि वर वधू का प्रेम अखंडित बना रहकर दंपति नाना आनंद भोगे। अतः दम्पति का उत्तम सुख और प्रीति बनी रहे ऐसी दृष्टि रखना यह उनके पालकों का पवित्र कर्तव्य है। केवल धन पर नहीं।

मंगल विचार

मंगल ३४ ग्रह सात हैं, सूर्य- चंद्र-मंगळ बुध गुरू, शुक्र, शनि इन सबोंके फल, फलित ज्योतिष शास्त्र में कहे हैं। इसमें मंगल के भी फल की कुंडली से जाँच कही है ठीक उसी तरह सब ग्रहोंके उच्च बल इत्यादि देखे जाते हैं।

३५ किंतु अफ़सोस है कि कई लोगों को अन्य ग्रहों की जाँच करने को तो परिश्रम और सब ग्रहोंके बलों का फल सीखनेमें सिर खर्च करना पड़ता है। यह कठिन कार्य में तो घुसना जड़ मालूम होता है। किंतु पत्रिका समक्ष आते ही मंगल पर कमर कस ने लगते हैं। और इसका एक श्लोक भी बना रखा है। ×

× **लग्नेव्ययेच पाताले यामित्रे चाष्टमे कुजे॥**
कन्या भर्तृविनाशाय भर्ता कन्या विनाशदः॥

अन्यदपि श्लोकं पठंति।

३६ यह श्लोक मुहूर्त चिंतामणि या मुहूर्त भार्तण मुहूर्त तत्व, आदि कोई मुहूर्त ग्रंथों मे नहीं है। सिर्फ मुहूर्त चिंतामणि की टीका के बीचमें-किसी एक जगह श्लोक पढ़ा जाता है यों कह कर बीचही में यह श्लोक धर दिया है। न इसको कौई आधार है और न प्रमाण।

३७ हाँ यह बात जरूर है कि जैसा ग्रहों का फला देश देखा जाता है। उसी प्रकार इसका फला देश मात्र देखना जरुर है। इसका मतलब यह नहीं कि मंगल को मंगलीक लड़का या लड़की ही होना। क्यों कि यदि ऐसा होता तो क्या मुहूर्त ग्रंथों मे इसका मूल में कहुँ उल्लेख तो होना। किंतु ऐसा कहीं पर भी नहीं है। इसी से स्पष्ट होता है कि जितना यह लोग मंगल को महत्व देते हैं; उतना कोई महत्व नहीं है।

३८ कन्याका वैधव्य और वर की विधुरता दिखानेमें केवल मंगल ही दिखता है ऐसा नहीं है। सब ग्रह ऐसी बातको दिखा सकते हैं। यानी कुल ग्रहों के बला बल से इसकी जांच होती है × अर्थात् सप्तम स्थानमें कोई भी क्रूर ग्रह आजाय तो वैधव्य या विधुर योगायोग का विचार करे यों लिखा है।

३९ और ऐसा सौभाग्य भंग कारक योग वधु-वर मेसे किसी को हो तो वधु का पिप्पलसे; और वर का आक के वृक्षसे विवाह करनेका कहा है। पश्चात् इनका विवाह चिरजीवी वर वधु के साथ करने की आज्ञा दी है।

४० क्यों कि वैधव्य या विधुर योग सब क्रूर ग्रहों से जाना जाता है। सारांश थोड़े से में कहने का तात्पर्य यह है; कि क्रूर ग्रह जैसे- "रवि सहित बुध - शनि मंगल - रवि यह ग्रह क्रूर प्रकृति के" हैं वैसाही उसका फल जाँचा जाता है। अकेले मंगल पर ही इसका विचार होता है यों कहना गलती है।

४१ अतः अब जब हम समझ गये कि मंगल यह अन्य क्रूर ग्रहों की तरह क्रूर ग्रह है। और ग्रहों के अनुसार इसका भी फल जांचा जाता है। ज्योतिष के अन्यान्य जगह प्रत्येक ग्रह का तुल्य बल विचार कर के वधु वर

× वैधव्य क्रूरखेटै मदन गृह गतै मिश्रितैः स्यात्पुनर्भूः

के सौभाग्य का मान तपासना चाहिये। अन्यथा अकेले मंगल पर ही इसका निर्णय लगाना सर्वथैव निराधार है।

४२ क्यों कि मंगल यह ग्रह कभी स्वक्षेत्री कभी वर्गोत्तमी, कभी उच्चका, कभी नीचका कभी मित्रक्षेत्री तो कभी शत्रुक्षेत्री आदि कई बातें ऐसी हैं जो मंगल लग्नमें चतुर्थमें. सप्तममें, अष्टममें, और द्वादश भावमें स्थित होते हुएभी शुभ होता है। अतः अब इस विषय को * अधिक न बढा कर यहां इतना ही कथन पर्याप्त है कि वधुवर की जन्म कुण्डली में अकेले मंगल हीसे निर्णय लगाना गलती और निराधार है। अतः अन्य सब ग्रहों के फल तुल्य बलाऽबलादि तोल कर निर्णय लगाना यह ज्योतिष शास्त्र संम्मत और प्रशसंनीय है।

४३ अब जब वधु ने इस प्रकार संभाषणादि से स्वतः आत्मा की खात्री कर चुकी कि जिसके साथ मै विवाह करुंगी वह सत्पात्र और मेरे अनुकूल स्वभावका है। और वह मेरा सगोत्री नहीं है। उसके मैत्री गुण आधेसे भी ऊपर मिलनेसे यह मैत्री अखेरतक टिकाऊ रहेगी आदि कुल बातों की जाँच उसने कर ली तब उसके पालक माता पिता भ्राता आदि कौटुंबिक बान्धु बन्धवोंने मानसिक भावना से पसंत किए पति के प्रति इसका विवाह करने की सर्वांग परिपूर्ण संम्मति प्रदान करना यही पालक माता पिता आदिका निर्मल एवं पवित्र कर्तव्य है।

४४ क्यों कि जरासी जड़ वस्तू या कोई पदार्थ मनुष्य खरीदी करता है तब उसकी जाँच करने के लिये सैकड़ों प्रकार की चेष्टा करता है। फिर क्या मनुष्य को अधिकार है कि वह; जो अपनी तमाम जिंदगीभर जिस पुरुष के संह जीवन व्यतीत करने वाली है; वह उस जीव धारी प्राणी के पसंती से न दे! अर्थात् जड़ से चैतन्य में अधिक तया पसंती की चेष्टा करनी पड़ती है न! फिर ऐसी हालत में जिसका उसने अपने मन पसंतीका विवाह किया, तो उसको सच्चा आनंद प्राप्त होता है। उसके आनन्द के सन्मुख स्वर्ग सुख भी तुच्छ है। इसी के स्तंभ १३-२० तक में दिखा दिया है येही प्रथा वेदोमें थी.

* ज्योतिष के ग्रंथों में सब खुलासा मिलेगा।

सगाई की प्रथा वैदिक नहीं !

सगाई की प्रथा वैदिक या गृह्यसूत्रोक्त नहीं है ।

४५ वर और वधूके परस्पर सम्भाषण आदि स्वयं अपना पात्र अपने योग्य ढुँढ़ लेना (एक स्वयंवर की तरह) यह प्राचीन पवित्र एवं उज्वल ऐसी प्रथा को तोड़ मरोड़ कर; यह वाग्दान वाला नया **कोटिक्रम** खड़ा किआ है । क्यों कि विवाह संस्कार की तरह यह कोई संस्कार होता, तो वैदिक समय में जरूर यह चाल मिलती । किंतु वहाँ कहीं भी इसका नामो निशान तक नहीं है । इससे यह बात स्वयं सिद्ध होती है कि यह प्रथा पुरानी नहीं । और न यह किसी गृह्य सूत्र में दिखाई है ।

४६ मुहूर्त ग्रंथोंमें केशांत समा वर्तन आदि सबके मुहूर्त अनुक्रमसे बता कर आगे विवाह के प्रकार× और भेद भी दिखाए हैं । किंतु मूल में वाक्दान मुहूर्त कहुं भी नहीं कहा है । अर्थात् इससे यह स्पष्ट तया सिद्ध होता है कि, वाक् दान मुहूर्त खास कर ज्योतिष ग्रंथों में जबकि नहीं मिलते. तब यह निश्चय ही सिद्ध होता है कि यह पुरानी प्रथा नहीं अर्थात् आधुनिक विद्वानों की बनाई है । इस लिए स्वयं वर वधू के परस्पर संभाषण से जो वेद काल में स्वयंवर प्रथा चलती थी उसको नाम नामेट करने के लिए यह नया कोटिक्रम खड़ा किया है । क्यों कि ' न स्त्री स्वातंत्र्य मर्हति ' के भक्त लोगों का बनाया यह विधान है । कहने का सारांश यह है कि सगाई की प्रथा अवैदिक है । इस लिए सगाई के कृत्यों में पैसा खर्च करना फजूल है ।

**× ब्राह्मो, दैवं, स्तथा चार्षः प्राजा पत्य, स्तथासुरः
गांधर्वो, राक्षस, श्चैव पैशाचा चाष्टमोधमाः ॥ २१ ॥
षडाऽनु पूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरो वरान् ।
विद् शूद्रयोस्तु ता नेव विद्याद्धर्म्यान राक्षसान् ॥ २३ ॥
(मनु. अ. ३. २१-२३)**

४७ अब जब कन्या के गहने [शृंगार] की तरफ नजर फेरकर देखते हैं, तब पता चलता है कि विवाह संस्कार में गहने के संबंधमें न तो कहीं मंत्र हैं और न कोई विधि। हा इतना जरूर अथर्व संहितामें * ' कन्याके

कन्या के लिये गहना !

कन्याया ललाट प्रदेशे हिरण्य बन्धनम्।

ललाट प्रदेश में सुवर्ण को बांधे इस मथितार्थं की वहाँ आज्ञा पाई जाती है। अतः सोने का कोई तोभी पदार्थ [फूल– इत्यादि] बांधना चाहिए " इस आज्ञा के मुताबिक ललाट प्रदेश में पुष्प इत्यादि चिन्ह युक्त सोने की एक वस्तु होना शास्त्राधार है।

४८ बाकी आजकाल की भांति, तरह तरह की सैकड़ों प्रकार की चीजें [गहना] बनवा बनवा के पैसे की खराबी करना कोई आदर्शताको पात्र नहीं होता। वास्ते विवाहमें सिर्फ एक आभूषण स्त्री के लिये वैदिक संस्कृति से योग्य है।

४९ आजकाल प्रायः बहुत सी जगह यह भी देखने में आता है कि कन्या के लिए चाहे जितना गहना आजावे किंतु विवाह समय में वे सब आभूषण कन्या को नहीं पैराये जाते। अर्थात् हवन और सप्त पदी के समय वह अलंकार रहित रहती है। सो यह देख कर संतोष होता है कि अव्याहत यह प्रथा थोड़ेभी रूपमें क्यों न हो किंतु अभीतक हमारे में जागृत है।

५० कन्याके लिए वस्त्रके संबंधमें आजकल बहुतसा जंजाल फैल गया है कपड़े बनाते बनाते तब्यत तंग हो जाती है। यह सब व्यर्थ के ढकोसले हैं। सच तो यह है कि विवाह प्रसंग में हवन और सप्तपदी के समय वर की और से वस्त्र दिया जाता है वह बिलकुल साधा और सफेद रंगका होना चाहिये।

कन्याके लिए वस्त्र

अहतं यंत्र निर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयं भुवा।
शस्तं तं मांगलिक्येषु तावत्कालं न सर्वदा॥

(कश्यप स्मृति)

५१ मंगलिक कृत्यमें सफेद रंग का नवीन कोरा जो कि यंत्र से ताजा बाहर निकला हुआ है, ऐसा कपड़ा लाकर उसीदम धोकर; सूखाया हुवा नवीन सफेप– दशा जिसकी निकली हुई हैं; ऐसा कपड़ा वापरना चाहिए" अतः ऐसा कपड़ा कन्याको देना अवश्य है। सिवाय इसके अन्य जरीके अगर बेलबूटे या रेशमी रंग– बिरंगे आदि नहीं होना क्योंकि प्रयोगमें कोइ आवश्यकता नहीं.'

५२ यह सौभाग्यकी बात है कि विवाह के समय मारवाड़ी समाजमें प्रायः बहुत सी जगह कन्या को सफ़ेद शुभ्र वस्त्र (कोरा माता) ही पहराया जाता है। यह उस पुरानी वैदिक प्रथाका खासा चिन्ह है। और यही प्राचीन प्रथाके दिखानेकी एक स्मृति है।

५३ सारांश में कहने का तात्पर्य यह है कि वैदिक आदर्शता युक्त विवाह करने वालों को केवल एक ही वस्त्र और एक ही अलंकार जो उपर हम कह आए हैं सोई विवाह पसंगके समय पर बस है। इसके सिवा सगाईके बहाने वस्त्रालंकारों में हजारों रूपयों का जो चूरा करते हैं, वह सर्वथा अयोग्य है। क्यौं कि उसकी हद दिखावे तक पहुँचती है। और फिर ग्राममें डिम डिमी बजाने, गीत गाने, बाजे बजाने लाइन बाटने, कमीन कारु को लुटाने रिश्तेदारों को मनाने। ओर केवल मानाने ही नहीं तो मनाते मनाते नाकों दम लाने आदि बातों का फाटक खुल जाता है। ओर इसके कितने कटुफल लगते हैं, यह आज काल सब जानने लग गए हैं। इसमें विशेष कथन की कोई जरुरत नहीं समझता। किंतु सारांश में इतना ही कथन बस है कि सगाई भी प्रथा प्राचीन नहीं है। केवल एक वस्त्र और सिर्फ़ एक अलंकार वहभी विवाह प्रसंग पर देना वेदशास्त्र संम्मत है।

कन्यानेही वरका चुनाव करना ।

५४ जब इस बातका " वधु- वर की प्रेम संलग्नता पूर्ण संतोष जनक होवेगीं ऐसा " विश्वास होजाय कि इनका प्रेम जीवन जिन्दगी घनिष्ठता से रहेगा या नहीं इन बातों का स्वयं स्त्रीही चुनाव कर लेतीथी यह हम प्रथम ही बता चुके हैं। और सत्य भी है कि घर वालों के दबाव या मुस्तैदी से कन्या वैवाहिक वरके वरणका कार्य नहीं किया करती थी ।

अर्थात् अनुकूल हो या प्रतिकूल किंतु वह अपने कुलशील- गुणवान एवं तुल्यबल जो मन में जँच जाय और उनका आत्मा [ब्रह्म] गाही देवे की अमुकही की सेवा सुश्रुषा मै करुंगी । बस उसी के साथ उसका विवाह करा दिया जाता था ।

वरका वरण-

५५ अपने तुल्य वर कौनसा है । इसका स्वयं वह अपने आप चुनाव कर लिया करती थी । क्यों कि चुनाव के लिए यह बात स्पष्ट है कि कन्या की सज्ञान अवस्था होना जरूरी है । आज काल की तरह गूड़ा गूड़ी वाला तमाशा नहीं होताथा; जिस के की कटु फल आजकाल लोग अनुभव कर रहे हैं । प्राचीन इतिहास भी इस बातकी सत्यता दिखा रहा है । द्रौपदीनें अर्जुनके- दमयंतीने नलके ! सीताने राम के ! उत्तराने- अभिमन्यूके- लक्ष्मणाने साम्बके आदि सैकड़ो प्रमाण याद दिलाते हैं कि यह प्रथा पुरातन काल से होती आरही है । वरण=का अर्थही मुकरर करना या कायम करना अथवा निश्चित ठहराना आदि होता है।

५६ याज्ञिक प्रयोगोमें- आचार्य त्वेन त्वामहं वृणे- ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे आदि वचन कहे जाते है । यहां वृणे= वरण का अर्थ कायम किया मुकरर किया यही होता है । ठीक उसी प्रकार- वरण= वर्न्यो= वर आदि शब्द हैं । इसका मथितार्थ से भी यही स्पष्ट होता है कि वधुका नियुक्त किया हुवा ही वर संज्ञक होता है । संबंधी यों या आप्त वर्गों से नियुक्त किया नहीं । क्यों

दुर्योधनादि लक्ष्मणाके माता पिता विरुद्ध होते हुए भी लक्ष्मणाने अनिरुद्ध के गलेमें वर माला डालना । द्रुपद राजा के मर्जी विरुद्ध द्रौपदीने अर्जुन के गलेमें वर माला दालना यही स्त्री के स्वतंत्रताके खासे प्रमाण हैं ।

५७ बस अब इस विषय को अधिक न बढ़ाकर इतना ही कहना पर्याप्त समझता हुं की वधु की वर के संबंध में पूर्ण सम्मती ही नहीं बल्कि उसके आभ्यंतरिक एवं आत्मिक= मनोभावना से और कई चेष्ठाओंसे निश्चित किए वर के साथ जो विवाह की संलग्नता की इच्छा करती हो; उसको पूर्ण करना ही पालको का पवित्र एव समुज्वल कर्तव्य है । और उसीका पुण्य है अर्थात यही वर प्राप्ती की निष्पाप मय आदर्शता है । अन्यथा आठ वर्ष की बालिका को अप्रिय पुरुष के साथ विवाह बंधनमें बांध देनेसे उसकी खाख हुई जीवन जिंदगी, दोष युक्त होनेसे पिता पापका भागीदार होता हैं ।

विवाह की तयारि ।

१ अब जब यह बात तय होगई कि अमुक व्यक्ति के साथ विवाह करनेका वधुका सत्य मानसिक विचार होगया है। और उसका संकेत भी उसी व्यक्तिके लिये यांचात्मक है। तब उस के लिये पाल कों का परम धर्म है कि उसकी इच्छा पूर्ण करने के लिये वैवाहिक समस्त सुविधाएँ प्राप्त करे ।

२ वधुवर के नाम से उत्तम तिथि का निश्चय करालेना चाहिए । जिस

विवाह का दिन निश्चय.

दिन दोनों को साऽनुकूल चन्द्रमा नक्षत्र– और ग्रहबल उत्तम हों ऐसे पवित्र दिन को देख खोजकर विवाह का दिन नक्की कर लेना चाहिए । क्यों कि गृह्य सूत्र में कहा है पुण्याहे........ इसका अर्थ ही यह होता है कि पुण्य=पुण्ययुक्त पवित्र; आहे=यानी दिनमें:—इसका मतलब यही होता है कि शुद्ध अच्छे दिन में कुमारी वर का हात पकडे ।

३ इस उत्तम दिनके शोधनेका विधान बताने के लिये 'ज्योतिष शास्त्र' है। किसी भी उत्तम ज्योतिषी के पास जाकर वधू-वर के नामसे विवाह का तिथि निश्चय कर लेवे। क्यों कि उत्तम पवित्र दिनमें किया कार्य फल स्वरूपमें उत्तम ही होता है। इसलिये जहां तक हो वहां तक श्रेष्ठ मुहूर्त देखकर ही कार्य करना उत्तम है।

तिथि निश्चयमें सावधानी।

४ अकेले तिथि निश्चय से ही काम नहीं चलता तो वहां वर वधूके नाम से दस दोश[*] रहित शुद्ध दिन ही देखकर कई ज्योतिषी केवल तिथि मात्र लिख देते हैं। किंतु अकेले तिथि मात्र ही दे देनेसे उसमें आगे बहुत सी जगह लग्न भावकी अड़चण आकर खड़ी होती है। इसलिये वधुवर के नाम राशी से लग्न शुद्धि और इसके पश्चात् लग्नांश शुद्धि भी देखना अवश्य है। लग्न-होरा द्रेष्काण-नवांश-द्वादशांश-त्रिंशांश आदि कुल बातोंसे शुद्ध ऐसा दिन देखना और ऐसा दिन देखकर फिर ज्योतिषी ने मुहूर्त पत्र अपने हस्ताक्षर सहित लिखकर लेखी देना चाहिये।

५ यहां कई महानुभाव यह शंका कर सकते हैं कि यह तिथि और मुहूर्त इत्यादि देखने की दिक्कत हमारे पिछे क्यों? लग्न वग्न से हमे क्या मतलब!! लग्न टल गया तो क्या लड़का लड़की भग जाती हैं। होता क्या है। जिस दिन बातचीत का योगा योग और मन इच्छा हुई बस उसी दिन विवाह कर लिया! और काम निपटा। यह क्या कि हम मुहूर्त आने तक की राह जोते रहें। अस्त हो या फस्त हो हमारे किए काममें कौन आड़ा आता है? फिर यह व्यर्थ की दिक्कत हमारे पिछे क्यों?

६ इसके उत्तर में इतना ही कथन पर्याप्त है; कि आकाशीय ज्योतिर्गोलोंकी प्रेरणा से समस्त जगत् बाध्य है। अणु रेणु परमाणु से लेकर एक दिन

---

१ लत्ता २ पात ३ युति ४ वेध ५ यामित्र ६ बुध पंचक ७ एकार्गल ८ उपग्रह ९ क्रांति साम्य १० दग्धातिथि

समुद्र–पर्वत–नदी–समस्त जगत् जलमय होगा। जल को अग्नी उड़ा लेगी। अग्नि को वायू खाजायगा और वायु को आकाश हड़प कर लेगा। किंतु आकाश में स्थित ज्योतिर्गोलों की प्रेरणा परिवर्तित भलेही होजाय किंतु समूल नष्ट नहीं हो सकती। यह अच्छेद्य आदाद्य और अविनाशी है। अतः आप हम सब इन ज्योतिर्गोलों की प्रेरणा प्रसाद से सौ पचास वर्ष की यात्रा करने आये हैं। किंतु अखिर अपने निवास का अखंड मंदिर आकाश के स्थित ज्योतिर्गोल ही हैं।

७ इसीमें सूर्य चन्द्रादि सप्त ग्रह भ्रमण करते हैं। व्यवहार में हर जगह कहांतक कहुं क्षण क्षण में सेकन मिनिट, घंटा दिन, वार, मास इत्यादि जो भी हम मुखसे उच्चारण करते हैं वह सब ज्योतिषही है। ऐसी ज्योतिष के प्रत्यक्ष तत्वों के अनुभवों को प्राचीन ऋषि मुनियोंने औतींद्रिय ज्ञान चक्षुसे जो ज्योतिष के विधि विधान स्थिर किये हैं। वह बहुत ही गंभीर एवं उपादेयता युक्त हैं। इसीसे वैवाहिक विधी में जगे जगे इनकी महिमा दिखाते हुये विवाह विधि होती है। क्यों कि विवाह तो होता जमीन पर है। किंतु आकाशीय ज्योतिर्गोलों की महिमा उन मंत्रों में ओतःप्रोत भरी हुई हैं। अतः यहां इतना ही कहना बस है कि शुद्ध पवित्र दिन है; या नहीं? इसको स्पष्टतया दिखाने में संसार भरमें अपने एक अकेला ज्योतिष शास्त्र ही है; और दूसरा नहीं।

८ क्यों कि इस शंकाको करने का मूल कारण; ज्योतिष शास्त्र की अनभिज्ञता के सिवाय अन्य कोई नहीं। जब आप इस बातको ठीक तौरसे उत्पत्ति सहित समझ लेंगे की—

कुण्डली= आकाश की ग्रह स्थिति दर्शक नकसा
तिथि= सूर्य चन्द्रका परस्परांतर
(चंद्र) नक्षत्र= चन्द्रमा को आकाशमें देखनेका स्थल
योग= सूर्य चन्द्रका अंतरात्मक जोड़
करण= सूर्यचन्द्रान्तरसे पृथ्वीतक खींची रेखा
लग्न= उदित भगोल विभाग

कुंडली- लग्न- इत्यादि क्या चीज हैं, तब आपके झट से समझ में आजायगा की यह ज्योतिष शास्त्र, अबाधित प्रत्यक्ष देदिप्यमान ज्योतिर्गोल की स्थिति- स्थापकता- गति- और फल खानेवाला शास्त्र है। अस्तु कहने का तात्पर्य यह है कि वधु- वर का पिंड ही जिस योगों से बना है; वहां ज्योतिष का विचार पूर्ण रूपसे होना और वही अपने द्वारा होना यही योग्य है। अन्यथा बिना ब्रेक की गाडी की तरह धोकेका करना है। अतः उत्तम मुहूर्त देखनाही आदर्शता है।

लग्न शुद्धि और सुलग्न साधान

९ जिस प्रकार लग्न की शुद्धि देखते हैं उसी प्रकार अंश शुद्धि देखी जाती है अर्थात् लग्न लग भग दो घंटेका होता है। और एक लग्नके ३० अंश होते है। यानी ४ मिनिट तक एक अंश रहता है। यह उच्चांश कहलाता है *। इस श्रेष्ठ उच्चांश में वर- वधु का पाणिग्रहण और परस्पर समीक्षण होना चाहिये। क्यों कि उक्त सिर्फ चार मिनिट बडे महत्व के और अमौलिक रहते हैं। इसमें कौनसा कार्य किया जाय ? इसका उत्तर सहसा बहुतों के समझमें नहीं आतां यह बडे दुःख की बात है।

सुलग्न साधन में होनेवाली भूल !

१० मारवाडी समाज में विवाह आदि प्रसंगोंमे मुझे प्रायः बहुतसी जगह यह स्वतः देखनेका मौका आया है कि कोई पंडित कहते हैं; सुलग्नमे खुंटी गाडदो बस लग्न सध गया। कई महाशय अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देते हैं की नहीं ! उस वेदी पर गाडी हुई खुंटियोंमे कच्चा तागालपेट दो सुलग्न सधगया। कई कहते हैं नहीं साब सुलग्न तो तब सधेगा जब कार्यारंभ होगा। कई कहते है वधुवर के गण जोडा (ओढणा दुपट्टाकी ग्रंथी) बांधदो बस सद गया सुलग्न।

---

*लग्ने चतुर्दशो भागो वृषभस्य मकरस्यच। कन्या कर्कट मीनानां······

औरतोंकी ओर से सुलग्नमें लापरवाही

११ जिसमें स्त्रियों के लंबे चौडे कृत्य जल्दी सरते नहीं। अभी यह होना है अभी वह होना है। उनकी यह दलीले घर वालों के नाकों दम ले आती है फिर वहां सुलग्न का विचारे का क्या ठिकाना? डुकरिया पुराण समाप्त हो तब कहीं सुलग्न के लिये, घर वाले को सांस निकालनेका विचारे को मौका मिले न। वहां तो गीतों की पानीके बरसात की तरह झड़ लगी रहनेमें कहीं क्षति न होजाय इधर पूर्ण दृष्टि रहती है। ऐसी हालतमें सुलग्न भी बिचारा घबरा कर लोटकर चला जाता है।

पाणिग्रहण और परस्पर समीक्षण सुलग्नमें

१२ विवाह विधान में वधुवरका पाणिग्रहण और परस्पर समीक्षण यह श्रेष्ठ समयमें होना चाहिये। क्यों कि विवाह विधानमें मुख्य प्रधान विधि यही है। और इसीके लिये विवाह मुहूर्त लेते समय (सुलग्न की घडी को अर्थात् आज की भाषामें) स्टैंडर्ड टाइम को नक्की करा लेना है।

१३ अर्थात् कितने बजकर कितने मिनिट पर पाणिग्रहण करना इसकी पूर्ण सावधानी रखना जरूर है क्यों कि बहुत सी जगह यह देखनेमें आता है कि, पंडितों से विवाह की तिथि मात्र पूछलेते हैं किंतु स्टैंडर्ड टाइम में यानी कितने बजकर कितने मिनिट पर पाणिग्रहण (हतलेवा) और परस्पर समीक्षण (वरने वधूकी ओर, और वधुने वरकी ओर देखना) करना इसका ठीक ठीक घंटा– मिनिट– सेकंड– आदि विवाह मुहूर्त के साथ साथ निकलवा लेना चाहिये।

सुलग्नकी सावधानी की पुरानी चेष्ठा

१४ पुराने कालमें विवाह के दिन सूर्योदय से पानीकी गंगाल में घटिपात्र छोड दिया जाता था। और लग्न समय तक उस गंगाल के घटि पात्र के पास अहर्निष दो चार आदमी सावधानी के साथ सचेत रहने वाले अदल बदल कर रखे जाते थे। और ऐसे कठिन प्रायास से घटि पल विपल आदिका

' मुहूर्त में सुलग्न सावधान ' नामक हमारी पुस्तक में लग्न साधन की और ज्योतिष की आवश्यक जानकारी दी है।

नाप करके उस से सुलग्न का साधन किया कर ते थे। किंतु उससे भी सुगम काल गणना का नाप दिखाने वाली घड़ी वाच है। सो इसका उपयोग करना जरुरी है।*

अर्थात् सुलग्न के घटि पलात्मक समय को स्टँडर्ड टाईम अवर मिनिट का सूक्ष्म समय निकालना यह ज्योतिषी का काम है। विवाह मुहूर्त पत्र देते समय ही देदेना चाहिए। और उसी तरह यजमान नें ठीक ठीक उसी घंटा-मिनिट-सेकन पर पाणिग्रहण और वर वधू का परस्पर समीक्षण कराना जरूरी ही नहीं किंतु अत्यंत महत्व की बात है। यानी विवाह दिन सुबह के समय सूर्योदय होतेही घड़ी (वाच) को तार आफिस या पोस्ट ऑफिस से मिला रखना चाहिए ऐसी दो घड़ी अवश्यही मिलाना चाहिए। कदाचित कोइ घड़ी बंद होजाय या और कुछ गड़ बड़ हों भी जाय तो दुसरी घड़ी ठीक रहती है।

सुलग्न साधन का आजका तरीका

विवाह मुहूर्त लिखाते समय, समय का खुलासा यानी स्टँडर्ड टाइम् भी यजमानने पंडितसे लिखवा लेना चाहिये। ताकि विवाह समय पर खास टाइम में कोई गड़ बड़ी पैदा नहो। यजमान ने घरमें स्त्रियों और पुरोहितको यह बातकी प्रथम ही ताकीद कर देना चाहिये की हमारे यहां के बिवाह में ठीक इतने बजकर इतने मिनिट पर पाणिग्रहण होगा (हनलेवा) और परस्पर समीक्षण यह प्रधान कार्य करें। अन्य कार्य इस के पहिले उरका लेवें.

विवाह मुहूर्त लेते समय में टाइम का खुलासा।

वैदिक जमानेमें प्राय: दिनमें विवाह करनें की प्रथा चालू थी। क्यों कि पारस्कर गृह्य सूत्रमें वधुको- वर सूर्य दिखाता है। इससे स्पष्ट होता है कि दिन में विवाह करने की प्रथा आदर्ष मानी गई और वही

दिवालग्न की प्रथा वेद का लीन है।

---

* विवाह मुहूर्त का फिक्स टॉइम् हमारे यहांसे निकाल देते हैं

चाल दक्षिण महाराष्ट्र और कुछ गुजराथ में भी है। किंतु मारवाड़ी लोगों में प्रायः रात्री लग्न की प्रथा अधिक चालू हो गई है।

रात्री की प्रथा है, इतना ही नहीं तो सायंकाल समय में भी कन्या पक्षके जितने होते हैं; वे सब अपने ऐश आराम - हात मू धोने- सैल सपट्टा करने- साबू तेल लगाने-ढंडाई घोटने- भांग पीने- तास खेलने- आदि कामों मे प्रस्त रहेते हैं। वधुवर का जहां विवाह होता है, वहा वधुवर के कल्याणार्थ उनके आनेका खाँसा ऊपर का उपकारी उदाहरण ही बस है।

यदि आधी रातके या पिछली रात के फेरों का लग्न हुवा तो फिर देखना ही क्या है। इधर लड़की उँगती है; तो उधर लड़का उँगता है। जैसे तैसे इनमे हुशारी का जोश भरा तो भी लड़कीकी मा- उसका पिता- नाई नायन पुरोहितजी और दोचार छोकरा छोकरी के अलावा मजाल क्या है कि और अधिकों का वहां दर्शन भी हो जाय ? क्या यही वधु-वर के कल्याण चिंतन वालों का परम कर्तव्य है। जो नींदो के घ-राटे लेते पड़े रहतें हैं। फिर पुरोहित ही बिचारा कुछ दौड़ धूप करता चिल्लाता हल्ला गुल्ला करता है ये लावो वो लावो करता करता वह भी थक जाता है ऐसे समय में बिचारे सुलग्न का क्या गुजारा आपही बताइये ?

इसमें किसका दोष किसी का नहीं। क्यों कि रात्री का समय ही निद्रा प्रिय रहता है। सो तो प्रकृती अपना असर करे बिना थोड़ी छोड देगी। सच तो यह है कि मोंगल लोगों के उत्पात प्रायः मारवाड में अधिक रहे हैं। अतः इस रात्री की प्रथा को जोर आनेका प्रायः यही कारण पाया जाता है कि मोंगलों के अत्या चारों से उकता कर रात्री को फेरे कराने की प्रथा का अधिक जोर होने लग गया। और वह आज रुढ़ी बन बैठी है।

कोई कहे की गृह्य सूत्रों में सूर्यमुदीक्षे रन् के पश्चात् ध्रुवं दर्शयति भी लिखा है किंतु वह-सायंकाल के पूर्व पाणि ग्रहण होकर यज्ञ-होम इत्यादि

होनेमें रात्र होजाती थी तब ध्रुवं दर्शयति लिखा है। उसका मतलब यह नहीं की रात्री की प्रथा थी। अतः दिनमें विवाह सूर्योदय पश्चात् प्रातः काल में गोरज मुहूर्त में, या सूर्यास्त के पूर्व गोधूली समय के पहिले होना ही सब बातों से श्रेष्ठ तथा आदर्शता युक्त है। सिवा इसके रात्री की आसुरी वेला में विवाह का करना समुचित नहीं। अतः दिवा लग्न की प्रथा आदर्श युक्त है।

दिवा लग्नसे लाभ

प्रातःकालकी पहिली प्रहर, यह समय सम्पूर्ण दिनमें विशेष महत्व का है। जो कुछ भी विशेष कृत्य जो हुवा करते है; उनमें प्रायः यही समय काममें लिया जाता है। जैसे– मौंजि-बंधन शिलान्यास, व्रतोद्यापन, वास्तूपूजा, कलश प्रवेश, वामार्क देखना, अन्न प्राशन, दोलारोहण कर्णवेध, आदि तमाम कार्य प्रायः दिनके पहिली प्रहर में होते हैं।

क्यों कि यह समय ही ऐसा है कि इस समयमें सब लोग अपने नियमित विचारों में संलग्न रहने की तयारी में रहते हैं। कोई प्रातःकालिक पूजा पाठ से निवृत्त होता है तो कोई भोजनादिक विधिसे निपट ने की चेष्ठामें रहता है। कोई ऑफिस जाने की गड़बड़ रहने से कामों मे व्यग्र रहाता है। कहनेका मतलब गड़बड़ कुछभी हो? किंतु उपस्थिति मात्र सबलोगोकी प्रायःघर मे ही रहती है। अतः ऐसे सुन्दर समय में यदि विवाहोत्सव हुवा तो समय पर उपस्थिति समस्त बंधु–बांधवों की सहर्षता और बिना दिक्कत होसकती है। न कोई सोता न कोई उँगता बस मजे में शांती से विवाह के समय आबाल वृद्धों की उपस्थिति रह सकती है। इतना गांभीर्य रात्रीके विवाह में नहीं? मेरा कहने का मतलब यह नहीं कि मै कोई रात्री के विवाहकी मनाई करता हुँ। किंतु इसके कहने की गरज यही है कि रात्री में लग्न (विवाह) करने की अपेक्षा दिनमें विवाह करना आदर्षयुक्त है। तभी गृह्य सूत्रों में इसका विधान प्रथम (सूर्यमुदीक्षेरन्) सूर्य को दिखाना चाहिये। ठीक यही प्रकार मौंजी बंधन का भी है। उसमें भी सूर्य ही दिखाया जाता है अतः दिवा लग्न ही रहना आदर्श युक्त एवं सर्व श्रेष्ठ है।

विवाह की सुलग्न कुंकुम पत्रिका।

जो लग्न (समय) वधु–वर के विवाह के लिए खास कर मुकर किया है। उस नियत समय की घोषणा करने का यह अर्वाचीन साधन है। पुराने जमाने में जब प्रेस और सुन्दर छपाई, उत्तम कागद, सोनेरी अक्षर नहीं थे तब गावों गांव मनुष्य भेजकर विवाह के समय की पत्र इत्यादि से घोषणा की जाती थी इस लिए पत्रिका छपाना ही जरुर है ऐसा कुछ नहीं। अर्थात् खास कर छपाई होना ही चाहिये; ऐसा कुछ सक्ती का मामला नहीं है। किंतु किसी की इच्छा इसी द्वारा घोषणा करने की हो तो कर सकता है। क्यों कि यह भी एक घोषणा करनेका आज काल का तरी का है। इसलिये उसका नमूना देखा देते हैं कि पत्रिका के लिखनेका ढंक किस प्रकार का होना चाहिये।

आज कल पत्रिका लिखने की सैकड़ों तरह की रूची होगई है। कोई कैसी लिखता है, तो कोई कैसी; सचमें पत्रिका में अत्यावश्यक समाचार क्या है ? इस ओर बहुतोंका ध्यान कमी रहता है। इतना ही नहीं तो कई दुर्लक्ष कर जाते हैं। जो आवश्यक नहीं है; ऐसा लंबा, चौड़ा, रंग– बिरंगा पचड़ा छपा देते हैं। उसमें खास अवश्यक बात की क्षति रह जाती है। इस लिए उसका नमूना दिये देते है।

पत्रिका का नमूना नं. १.

श्रीहरिः

विवाहोत्सव का आमन्त्रण ।

श्रीमान् **योग्य**

सहर्ष सूचित किया जाता है कि सौभाग्याकांक्षिणी बाई **वसन्त सेना** मिती पौष शुक्ल १४ गुरुवार तारीख ५ जनवरी १९२८ इ. स्टँाडर्ड टाइम् प्रातः ७ बजकर ४४ मिनिट पर नागपुर निवासी बाबू ब्रज मोहन पाण्डे के पुत्र बाबू **शैलेन्द्र कुंवर का पाणि-ग्रहण करेगी ।** उक्त समय पर आप हार्दिक आशिर्वाद प्रदान करने के लिए अवश्य पधारें ।

आपका

रायपुर **विष्णुशर्मा वाजपेय.**

श्रीहरिः

पत्रिका का नमूना नं. २.

विवाहोत्सव का आमन्त्रण ।

श्रीमान् **योग्य**

सहर्ष सूचित किया जाता है कि चिरंजीव बाबू **शैलेन्द्र कुंवर का** रायपुर निवासी विष्णुशर्मा वाजपेय की कन्या सौभाग्याकांक्षिणी **बाई वसन्त सेना**— मिती पौष शुक्ल १४ गुरुवार तारिख ५ जनवरी १९२८ इ. स्टँडर्ड टाइम् प्रातः ७ बजकर ४४ मिनिट पर **पाणी-ग्रहण करेगी ।** सो उक्त समय पर हार्दिक आशिर्वाद प्रदान करने के लिए अवश्य पधारें ।

आपका

नागपुर सी. पी. **ब्रज मोहन पाण्डे**

कन्या पक्षके कार्य ।

विवाह वधु के घरपर किया जाता है । तब वहां मंडप और मंडपके बीचमें वेदी बनाना आवश्यक है । क्यों कि वेदी पर बैठके वर वधू और वरको हवन करना ऐसी ऋषि आज्ञा है—

मंडप विधि

वधू के हातकी कनिष्ट अंगुली पर्यन्त की गिनती हात कहलाती है । + ऐसे सोलाह हात का औरस चौरस मण्डप करे । ×और वह चारों द्वारों से सुशोभित करके तोरण इत्यादि बांधे । * पश्चात् उसमें वाम भाग पर एक हात उंची चार हात लंबी और चारही हात चौड़ी ऐसी चौकोनी वेदी पायरीयुक्त करके चार केलीके खम्ब, तोरण, पुष्पमाला आदिसे सुशोभित (रम्य) बनानेके पश्चात् अग्नि सहित वधू–वरने उसमें प्रवेश करे ऐसी ऋषि आज्ञा है । अतः यह मण्डप होनाभी आदर्शता है ।

+ हस्तो वध्वा सोपानं पश्चिमतः । (कन्या हस्तेनैव वेदि प्रमाणं)
(सप्तर्षि मते)

× षोडशारत्निकं कुर्यात् चतुर्द्वारोप शोभितम् ।
मण्डपं तोरणैर्युक्तं तत्र वेदिं प्रकल्प येत् ॥
अष्ट हस्तं तु रचयेत्मंडपं वा द्विपद् करम् ।
(वशिष्ठः)

* हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तै श्चतुरस्रां समंततः ।
स्तंभैश्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णां वामभागेतु सद्मनि ॥
समां तथा चतुर्दिक्षु सोपानै रति शोभितां ।
प्रागुदक् प्रवणा रंभां स्तंभैर्हंसशुकादिभिः ॥
(नारदः)

विवाह के दिन, या एक दिन पहिले का कृत्य

विवाह जिस दिन का मुकरर किया हो उसके एक दिन पूर्व कन्या को अभ्यंग स्नान [तेल–उबटना आदि] कराके उत्तम पीत वस्त्रादि धारण कराकर माता–पितासह कन्याने इनके अभावमें स्वतः कन्याने गणपति पूजन स्वस्ति पुण्याह वाचनादि कृत्यों से निपट कर पश्चात् कुल देवी मातृका का स्थापन पूजन कर उनका आशिर्वाद मांगे।

क्यों कि अभ्यंग स्नान यह एक शरीर की शुद्धि है अतः बात आदर्श युक्त है। साथमें मण्डप जो बनाया जाता है उसकी शुद्धिके लिये मण्डप पूज– कंकण बंधन– गौरी– हर पूजन यह सब बातें शास्त्र संम्मत होने से आदर्ष पात्र है।

इन मुख्य विषयों के अलावा अन्य कर्म निराधार एवं फजूल खर्ची के हैं। जैसे लड़की का [छोटी बिंदोरी बड़ी बिंदोरी] जुलूस निकालना उसमें अपरिमित जिद्दा जिद्दी से पैसा खर्च करना। चाक– भात– घरवा पूजन आदि प्रथा सब अवैदिक है। इसमें स्त्रियों की स्वच्छंद ताका हेतू ही मुख्य कारण है। अतः यह बाते निराधार होनेसे सर्व थैव त्याज्य हैं। इसलिये यह किसी प्रकार उपयोगमें नहीं लेना ही ठीक है।

× तदंग विहितं निर्विघ्नार्थं गणपति पूजनं– स्वस्तिपुण्याह वाचनं- अविघ्न पूजनं– मण्डप स्थापनम्। मातृका पूंजनम् आयुष्य मंत्र जपम्। वसोर्द्धारा। नांदिश्राद्धं चाद्यं करिष्ये। ग्रहा ऽ नु कूलता सिद्धयर्थम् ग्रहमखं करिष्ये ·······।

वरकी ओरके कुछ प्रधान कर्तव्य।

विवाहके सिर्फ एक दिन पहिलेका कृत्य

जिस दिन विवाह निश्चित किया हो उसके केवल एक दिन पहिले वरको वरके माता पिताओं ने अभ्यंग स्नान (उबटना–चिकसा– तेल इत्यादि से स्नान) करा कर उसके हात से गणपति पूजन स्वस्ति पुण्याह वाचन मातृका पूजन नांदि श्राद्धान्त तक कृत्य करा कर 'कुल देवी' की स्थापना और पूजन करा देना चाहिए। क्यों कि यह बातें शास्त्राधार युक्त होने से आदर्श है।

इसके सिवाय वरके घर पर मण्डप बनाना–वर का छोटी बिंदोरी बडी बिंदोरी जुलूस निकालना, उछाल बाग बाड़ी आदिकी लूट करना, चाक पूजने कुम्हार के यहां जाना, भात के बहाने उस पुत्रके मामा नाना को व्यर्थ में तंग करना, बिल्ली– बांदरे– छत्र चंवर आदिका डील डौल दिखाना, हत्ती इत्यादि पर बैठ के व्यर्थ का क्षणिक कृत्रिम गौरव दिखाना, गांव के चूकते बालक से लेकर बूढ़ेतक जाति वालोंको लड्डू–गुल गुले–गुलाबजांमून घेवर, रसगुल्ला आदि रसीली चीजों कि जिमनार गांव वालों को देना और गांव के पंचोंनें विवाह कर्ता पर सख्ती से गांव वालों को जिमाने के लिए बाध्य और लाचार करना, आदि तमाम कृत्य अवैदिक और सर्वथा त्यागने योग्य है।

बरात की तयारी

बरात ऐसे समय में घरसे खाना हो जाना जाहिये जो कि विवाह घर विवाह के समम से ४ चार घंटा पूर्व में पहुँच सके। इस अंदाज पर बरात वहां पहुँच जाना चाहिये। फिर दोनों गावों का अंतर कितना भी हो मार्ग मे खर्च होने वाला समय जाकर ४। ६ घंटा विवाह समय के पेस्तर पहुंच जाना ही सबसे उत्तम मार्ग है।

*** हमारा बनाया हुवा 'स्मार्त–प्रभाकर १ नामक पुस्तक देखो सब पूजन विधि विस्तृत वेदोक्त रीतिसे बताई है।**

बराती यानी क्या ?

सचमें देखा जाय तो बराती यह शद्ब या बरातकी प्रथा वैदिक पुराने जमानेमें नहीं थी । क्यों कि यह शद्ब ही अभीका बना द्योतक है । पुराण कालमें कहीं कहीं सखा और निजके भाई बान्धवों (कुटुंबियों) का वर्णन मिलता है । इससे यह अर्थ निष्पन्न निकलता है कि वर के निजके कुटुंबी मात्र विवाह में जाते थे । ओभी अतिथि रुपमें उनका जाना होता था अर्थात् (विवाह विधि पूर्ण होते ही झट्से लौट आने वाले) इससे वरके साथ के अतिथि= बराती शद्ब बना है वर– अतिथि का अपभ्रंश बराती है ।

बराती कैसे और कितने हों ।

घर के कुटुंब के होते हुए विवेकी, ज्ञानवान, वयोवृद्ध, और पूज्य पाद ऐसे पुरुष ही आवश्यक हैं । जिनके एकत्रित होनेसे ज्ञान-वृद्धि होवे ऐसों को अकसर साथ लेजाना चाहिये । यह आदर्शताका नमूना है । सिवाय ज्यादा पुरुषों को लेजाना केवल कृत्रिम गौरव दिखाना है । अर्थात् कममें कम १५ और उंचेमें उँचे २५ आदमी हद्द हैं । सिवा इसके जो बराती दुसरे पर भार रखने, छिद्रान्वेषण करने, तोता मैना की किस्सा गाने, पुरणमल का ख्याल रटने, नाचने, गाने, ठिठोली उड़ाने, जराजरासी चोजों के लिए घर वाले को तंग करने, नाको दम लाने, खुशामत करवाने, मानलेने, भांग गांजा उड़ाने, नाच चौसर के खेलमें समय बरबाद करने, आदि जिनसे घर वाले को नाकों दम आजाय ऐसे बराती यों को बरात में चलनेके लिए कष्ट देना ही व्यर्थ है । सारांश में कहनेका मतलब यह है कि सदाचारी, सत्यविचारी, ज्ञानी पुज्यपाद, वयोवृद्ध सारासार विचार को तौल कर चलने वाले व्यक्तियों को लेजाना ही आदर्शताका नमूना है ।

वधु पिताके औरसे सीमान्त पूजन

जिसको अपनी भाषामें सँयाला कहते हैं । यह जहां वर के उतर ने की व्यवस्था जिस जगह (मकान में) करी जाती है, वहां कन्या पिता एक कलश नारियल– गंध अक्षता– वस्त्र पुष्प– सुगंधित तैल– आदि वस्तु एक थाली में लाकर वर की पूजन करे । और घर आनेके लिए वरको आमंत्रित करे । यह

प्रथा अभीतक चालु है। किंतु इसमें एक ' मिलणी ' नामक नई प्रथा घुस गई है। वहां सब सगों को रुपये भेट करना पड़ता है। यह प्रथा निराधार है। इस को कोइ आधार नहीं। अत: सिर्फ यहांपर पूजा मात्र आदर्श है।

वरका मंडप में प्रवेश।

यह मधुपर्क पूजा अकेले विवाह मे हीं होती है; यों नहीं; तो पारस्कर गृह्यसूत्र में छ: जगह ऐसी पूजा करने का विधान है। एकतो अपना गुरु या आचार्य आवे वहां। दुसरे में ऋत्विग् आदि वरण में। तिसरे जामातको विवाहमें। चौथे राजाके लिए। पांचवे प्रिय यानी अत्यंत प्रेमी आजाय वहां और छटवे में वेदाध्ययन के पश्चात् स्नातक को। इस प्रकार उक्त छे जगह अर्घ्याधिकार कहा है। इसलिये विवाहमें जँवाइ के प्रति अर्घ्य पूजन कहा है इसी से अर्घ्य पूजन करना चाहिये। अर्थात्–

षडर्घ्या भवंति–

बाहर से घरमें वरके प्रवेश होतेही आसन– पाद्य– पादार्थमुदक– अर्घ्य, आचमनी– और मधुपर्क की पूजा कही है

कई जगह देखने में आता है कि प्राय: वर की पूजा तो एकतरफ धरी रहती है। और यहां फिर शांतिसूक्त गणपति पूजन– कलशपूजन– मातृका पूजन आदि शुरु कर देते हैं। कहांतक कहें ग्रह पूजन भी कराते हैं। इसमें अमौलिक समय की व्यर्थही में खराबी करते हैं। क्यों कि संस्कार भास्कर– या गृह्य सूत्र इत्यादिमें मधुपर्क समयमें ग्रहपूजनादि नहीं कहा है। चतुर्थीलाल की विवाह पद्धति में– **विवाह दिने तत्पूर्व दिने वा** विवाह के दिन दिनमें या उसके पहिले दिनमें ग्रह पूजनादि करे यों

इस समय पुण्यावाचन या ग्रहपूजन नहीं है।

ष्ट लिखा हुवा है। तो भी उसको पूरा न समझकर **'विवाह-समय में'** स पोथी को लेकर पारायण करना आरंभ कर देते हैं। किंतु उसके यथार्थ त्व को नहीं समझते, की कौनसा कार्य कहां करना चाहिये। हाँ जो विद्वान् शास्त्री लोग हैं वे तो-**साधुभवानास्तां** से यानी वर पूजन के कृत्यसे आरंभ करते हैं। दक्षिणी लोगों में भी ग्रह पूजनादि पहिले ही दिन उरका लेते हैं। किंतु वर मंडप में आते ही वरका पूजन-सत्कार करते हैं।

अतः विद्वान् पंडित लोगों को यह बात स्मरण रखना चाहिये की वर का मण्डप में प्रवेश होतेही **साधुभवानास्तां** से वर पूजन आरंभ करें। क्यों कि पुण्याह वाचनादि कृत्य तथा ग्रहपूजन वगैरे सुबहमें या एक दिन पहिले हो जाता है। फिर पुनः पुनः नहीं होता। इस लिये वर पूजन वर के प्रवेश होतेही कन्या पिताके हात से कराना ठीक है। और यही आदर्श है।

वधू का पूजन और वस्त्र देना।

इसी प्रकार वधु को गंध अक्षतादिसे वर पिताने पूजन कर के दो वस्त्र सफेद रंगके कोरे-इषद्धौत-उसीदम धोये हुए या यंत्र से निकले कोरे ऐसे दो वस्त्र देना ऐसा कहा है+। सो विवाह में कोरा भाता नाम से दिया जाता है। और झोलीभी भरते हैं। वह बहुत सी जगह सुवासणाके जरिये कराते है; किंतु वर पिताके ही हातसे गंध* अक्षत से पूजा वास्तव में होनी चाहिये।

+ ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं। परेणाधृतं वस्त्र युगलं परिधाय स्वेष्ट देवता पित्रादिभी नमस्कृत्य ·····।

*** शिष्टाचारात् वर पिता एवं विधिना वस्त्रं कुंकुम पुष्प फलैः वधुं पूजयेत्।** - संस्कार. भा.

विवाह प्रयोग ।

केवल एक घंटेमें समग्र विवाह विधि ।

संकल्प

विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः । श्रीमद् भगवतो महापुरुषस्य विष्णो राज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्यब्रह्मणो द्वितिये परार्धे विष्णुपदे श्री श्वेत वाराह कल्पे वैवस्वत मन्वंतरे एकोन त्रिशंति तमे कृत युगे कृत प्रथम चरणे जम्बूद्वीपे भरत खण्डे दण्डकारण्ये देशे गोदवर्या उत्तरे तीरे परशुराम क्षेत्रे कल्क्यवतारे शालिवाहन शके

संवत्सरे……मासे……पक्षे……तिथौ वासरे एवं गुण विशेषेण विसिष्टायां शुभ पुण्य तिथौ अमुगोत्र उत्पनोहं अमुशर्माहं मम श्रुति स्मृति प्रोक्त फल प्राप्तर्थं अनेन वरेण अस्यां कन्यायां उत्पादइष्यमाण संतत्या द्वादशा वरान् द्वादशा परान् पुरुषान् पवित्री कर्तुम् आत्मनश्च श्री लक्ष्मीनारायण प्रीतये कन्या विवाहांगत्वेन आगताय स्नातकाय वराय मधुपर्केणार्चयिष्ये ।

प्रयोग प्रारंभ ।

मधुपर्क पूजामें आव

वरको देनें को वहां इतनी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं । एक दर्भका आसन । एक पच्चीस दर्भका विष्टर । पांव धोने के लिये एक (गिलास) जलभरा पात्र । एक अर्घ्य पात्र । आचमनी को पात्र । कांसी की दो कटोरी जिसमें एक कटोरीमें शुद्ध

घीसे दुगुना सहत और सहत से चौगुना दधि मिलाकर मधुपर्क तयार करके दूसरी कटोरी ढ़क कर इतनी वस्तु तय्यार रखना चाहिये:—

आर्थात्

१ दर्भ का आसन

२ पच्चीस दर्भका विष्टर

३ पाव धोनें के जलका पात्र.

४ अर्घ्यका (–गंध–पुष्प अक्षत–दुर्वायुक्त) पात्र

५ आचमनी पात्र

६ मधुपर्क का (दो कांसेकी कटोरी) पात्र

उपरोक्त कुल वस्तू बिलकुल तयार रहनी चाहिये । पश्चात् कन्या पिता खड़ा होकर

आसनमहार्याह

कन्या पिताः—साधु भवानास्ताम् अर्चयिष्यामो भवन्तम् ॥४॥

वरः—अर्चय

आहरन्ति विष्टरम् । पाद्यं पादार्थ मुदकम् । अर्घम् । आचमनीयम् । मधुपर्कम् दधि–मधु–घृतमपिहितं कांस्ये कांस्येन ॥ ५ ॥ अन्य स्त्रिस्त्रिः प्राह विष्टरादीनि ॥ ६ ॥ पा. गृ. सू.

कन्या पिता—विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रति गृह्यतां ।

वरः—विष्टरम् प्रति गृह्णामि

वर आसन पर बैठ, विष्टर को सीधे हातसे स्वीकार कर के नीचे लिखा मंत्र कहते हुए ।

वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः । इमंतमभि तिष्ठामि यो मा कश्चा भिदा सति इत्येनम् अभ्युपविशति ॥ ८ ॥ पा. गृ. सू.

उक्त मंत्रको कह उस विष्टर को नीचे रख वरने उसके उपर आसन की तरह बैठ जाना चाहिये । पश्चात् वधुपिता पांव धोनेको

वधु पिताः—पादार्थ मुदकम् । पादार्थ मुदकम् । पादार्थ मुदकम् प्रति गृह्यताम्

वरः—पाद्यं प्रतिगृह्णामि

कुछ थोड़े गरम जलका * जल पात्र लेकर ब्राह्मण होतो दाक्षिण (दहिने) चरण को अन्यथा वाम चरण को प्रथम धोवे; पश्चात् दुसेर पैर को । उस समय निम्न लिखित मंत्र को कहे:—

विराजोदोहोऽसि विराजोदोहमशीयमयि पाद्यायै विरोजो दोहः ॥ १२ ॥

इस प्रकार मंत्र कहते हुए दोनों भी पैरों को धोवे । पश्चात् पूर्व वत फिर एक विष्टर और देवे उसपर वर पाँव को रखे × । फिर पहिले की तरह अर्घ पात्र उठा कर—

वधु पिताः—अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रति गृह्यताम्

वरः—प्रति गृह्णामि

वर को दे । वर उस अर्घ पात्र को लेकर शिरसे अभिवन्दन करता हुवा मंत्र कहे—

आपःस्थ युष्माभिः सर्वान् कामानवाप्नवान् ॥ १३ ॥

इस मंत्रसे अर्घ के जलका शिरसे अभिवादन (नमन) करे । पश्चात् उस अर्घ का जल जमीन में प्रवाहित करता हुआ निम्न लिखित मंत्र कहता जाय:—

समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत । अरिष्टास्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः ॥ १४ ॥

*** पादप्रक्षालनार्थं सुखोष्णोदकं ताम्रादि पात्रस्थ मिति सर्वं सं. भा.**

× पादयोः अन्यं विष्टरम् ददातीति वाक्य शेषः । एतस्मिन्नेव विष्टरे आसीनस्य पाद प्रक्षालनं ततो द्वितीय विष्टर !

और अर्घ पात्रका तमाम जल जमीन मे छोड़ता जाय । पश्चात् पूर्व वत **कन्यापिता** आचमन का पात्र लेकर—

वधु पिताः— आचमनीयमुदकम् । आचमनीयमुदकम् । आचमनीय मुदकम् । प्रति गृह्यताम् ।

वरः—प्रति गृह्णामि—

वर को देवे । वर उस पात्र को दोनो हातकी अंजुली से स्वीकार कर डावें हातमें ले नीचे लिखा मंत्र कहे:—

आमागन्यशमा स ँ सृज वर्चसा । तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ॥ १५ ॥ पा गृ सू.

उपरोक्त मंत्र कहने के पश्चात दो आचमन करे । पुनः **वधु पिता** मधुपर्क का पात्र लेकर—

वधु पिताः—मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रति गृह्यतां ।

ऐसा कह कर दोनों कांसे की कटोरी से ढका हुआ मधुपर्क को डावे हातमें रखकर सीधे हातसे उपर की कटोरी अलग हटाकर वधू पिता निम्न लिखित मंत्र को कहे

वधु पिताः—मित्रस्यत्वा चक्षुषा प्रतिक्षे

उसे वह मधुपर्क का पात्र दिखा कर पुनः उसकी एक कटोरी अलग करके वरको देवे वर उसको दोनों हातकी अंजुली करके निम्न लिखित मंत्रको कहता हुआ स्वीकार करे ।

देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेश्विनो र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ॥१७॥

दोनों हात की अंजुली करके वर मधुपर्क को लेकर (वाम) बायें हातमे कटोरी रखकर—

इत्यंजलिना वरो मधुपर्कम् गृहित्वा वाम हस्ते कृत्वा-अनामिकां गुष्ठाभ्यां त्रिप्रदक्षिण-मालोढ्य भूमौ किंचित् निक्षिप्य एवं त्रिवारं कृत्वा

अनामिका नामक दुसरी अंगुली और अंगुठेको प्रदक्षिणा क्रमसे तीन वक्त गुलाई से घुमाकर जमीन में अंगुली को तीन बार छिटक कर पश्चात् निम्न लिखित मंत्र को कहता हुआ—

यन्मधुनो मधव्यं परम ँ रूपमन्नाद्यम्। तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योन्नादोसान् ॥ २० ॥

उक्त मंत्रसे सिद्ध हुए मधुपर्क को वर ने किंचित या सबका सब प्राशन करना चाहिए, और बचाहुआ— क्या तो अन्य

पुत्रायान्ते वासिने वोत्तरत आसीनायोच्छिष्टम् दद्यात् ॥ २२ ॥ सर्वंवा प्राश्नीयात् ॥ २३ ॥ प्राग्वाऽसंचरे निनयेत् ॥ २४ ॥

कोई बालक बचे खावें। या असचर (जहां आवागमन नहो ऐसी) जगह लेजाकर डाल देवे।

इस प्रकार मधुपर्क प्राशन करने के पश्चात् आचमन करके प्राणाय.म करे।

आचाम्य प्राणानायम्य। वाङ् मे आस्येस्तु। नसोर्मे प्राणोस्तु। अक्षोर्मे चक्षुरस्तु। कर्णयोर्मे श्रोत्र मस्तु। बाव्होर्मे बलमस्तु। ऊर्वोर्मे ओजोस्तु अरिष्टानि मेंगानि तनूस्तन्वा मे सहसन्तु। इत्यनेन सर्व गात्राणि संस्पृश्य। कृतःस्यास्यं कर्मणः सांगता सिद्ध्यर्थं गोदानंच कुर्यात्। गौर्गौर्गौः इत्येना भिहिते

वरः—माता रुद्राणां दुहिता वसूनां ँ स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मागामनागामदितिं वधिष्ठ। ममचामुष्यच पाप्मोहतः। उत्सृजत तृणान-त्त्विति ब्रूयात्। गोदानंच कूर्यात् इति मधुपर्क पूजनम्.

पाणि ग्रहण विधि !

अब उस मंडप में जो १ हात उंची ४ चार हात चौड़ी वेदी बनाई गई; जिसे केलीके खंब आम्र पत्ते और पुष्प माला आदिसे सुसाजित किया है; उस वेदीपर प्रादेश मात्र हवनार्थ वेदी बनाई जाय। उस हवन निमित्त—

परिसमुह्य, उपलिप्य, उल्लिख्य, उधृत्य अभ्युक्ष्य- अग्निमुप समाधाय

उपरोक्त विधि से अग्नि स्थापन करे। पश्चात् पिता की आज्ञा लेकर वधु–वर दोनोंने भी वेदी पीठ पर आरूढ होना चाहिये। पश्चात् उस अग्नि साक्षिसे–

उद्गयन आपूर्य माणपक्षे पुण्याहे कुमार्याः पाणिं गृह्णीयात्

श्रेष्ठ और पवित्र समयमें एवं उत्तम दिनमें कुमारीने वर के हातका हस्तान्दोलन करना यानी हातको पकड़ लेना। बस यही (**पाणि** नाम हात का **ग्रहण** नाम स्वीकारना) **पाणिग्रहण** कहाता है। सो यह ठीक उसी समय में होना जो [स्टँडर्ड टाइम] प्रथम निकाल कर दिया गया हो। इनके वधुवरके खडे रहनेकी पद्धति सन्मुख रहना चाहिये। यानि पूर्व मुख वधु--पश्चिम मुख वर सुलग्नमें होकर परस्पर समीक्षण करते हुए दोदो तीन (वाच्) तीन घड़ियाल से ठीक ठीक उतरे हुए सुलग्न युक्त समयपर पाणि ग्रहण कुमारीने करना चाहिये।

कन्यादान की प्रथा वैदिक कालमें नहीं थी और न गृह्य सूत्रके समय थी। इसीसे पारस्करादि गृह्य सूत्रके मूलमे कन्या दान लिखा नहीं है। जैसे मौंजिबंधन मे बटु– आचार्य के बीचमें कोई बटु दान नहीं करता है। ठीक वही प्रकार कन्याका है। वि-नाम विधान युक्त 'वह प्रापणे' इस धातुसे वाह बनकर **विवाह** शब्द बना है। यहां दानका कोई संबंध नहीं है।

इसी से पारस्कर गृह्य सूत्र के भाष्यकार कर्काचार्य + एवं जयरामाचार्य ने अपने भाष्य में कन्यादान नहीं लिखा है। हाँ इनके पश्चात् के हरिहर—गदाधर—विश्वनाथ आदि आचार्योंने अपने भाष्यों में कन्यादान विधि कही है उसी प्रकार अभी के बने संस्कार भास्कर आदि आधुनिक ग्रंथों में तो सबही जगह यह विधि पाई जाती है। इससे तो वही बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि कन्यादान वाली प्रथा वास्तव में वैदिक नहीं। इतना होने परभी जिनका कन्यादान विधि करने ही से प्रेम हो वे भलेही करें किंतु यह निःसंन्देह है कि **परस्पर समीक्षण** और **पाणि ग्रहण** विधि वैदिक होने से आदर्शता युक्त विवाह होनेमें बस है।

× × × ×

जिन्हे कन्यादान करना आवश्यक प्रतीत होता हो

उनके लिये

कन्यादान संकल्प

यजमान सपत्नीक वर के सन्मुख बैठकरः — **आचम्य प्राणानायम्य देश कालौ संकीर्त्य·······अस्मि न्पुण्याहे अस्याः कन्यायाः अनेन वरेण धर्म प्रजया उभयोः वंशयोः वंशवृद्धयर्थं तथाच मम समस्त पितृणां निरति शयसानन्द ब्रह्म लोकावाप्त्यादि कन्यादान कल्पोक्त फलावाप्तये अनेन वरेण अस्यां कन्यायां उत्पादयिष्यमाण संतत्या दशपूर्वान्दशपरान् मांच एक विंशति पुरुषानुद्धर्तुं ब्राह्म विवाह विधिना श्रीलक्ष्मीनारायण प्रीतये कन्यादानमहं करिष्ये. ततो वर हस्ते सुप्रोक्षणादि करणम्**

+ कर्काचार्य को हुए १५ हजार वर्ष होगये। देखो हमारा **'वेदकाल निर्णय'**

(उपरोक्त संकल्प करके वर पूजन करे)

यजमानः—शिवाप:सन्तु । सन्तुशिवा आपः। सौमनस्य मस्तु । अस्तु सौमनस्यं । अक्षतंचारिष्टंचास्तु । अस्त्वक्षतमरिष्टंच । गंधा पांतु । सौमगल्यं चास्तु अक्षताः पांतु । आयुष्य मस्तु । पुष्पाणि पांतु । सौ श्रियमस्तु यत् पापं रोगं अशुभं अकल्याणं तद्दूर प्रति हतमस्तु

कन्यादानम्.

········अमुक गोत्रस्यामुक················शर्मणे प्रपौत्राय
········अमुक गोत्रस्यामुक················शर्मणे पौत्राय
········अमुक गोत्रस्यामुक················शर्मणे पुत्राय
········अमुक गोत्रस्यामुक················शर्मणे प्रपौत्रीम्
········अमुक गोत्रस्यामुक················शर्मणे पौत्रीम्
········अमुक गोत्रस्यामुक················शर्मणे पुत्रीम्

(एवं त्रिरावृत्य) अमुक गोत्रोत्पन्नाय अमुक शर्मणे वराय श्रीधर रुपिणे कन्यार्थिने वराय अमुक गोत्रोत्पन्नां अमुक नाम्नि मिमां कन्यां श्रीरूपिणीं वरार्थिनीम् यथा शक्त्यलंकृतां सोपस्कारां प्रजापति दैवत्यां प्रजोत्पादनार्थं भार्यात्वेण तुभ्यमहं संप्रददे । इति पठित्वा कुशयव युतं जलं कन्या हस्तेच वर हस्ते दद्यात् वरः स्वस्तीति वचनम् दत्वा

वरः—द्यौ स्त्वा ददातु पृथिवी त्वा त्वा प्रति गृह्णातु इति प्रति गृह्य

कोदात् कस्मादात् कामो अदात् कामायादात् कामोदाता कामःप्रति गृहीता कामैतत्ते ॥

दाताः—गौरी कन्यां इमां विप्र यथा शक्ति विभूषितां। गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय ॥ कन्ये ममाग्रतो भूयाःकन्ये मे देवि पार्श्वयोः कन्ये मे पृष्ठतो भूयात् तद्दानां मोक्ष माप्नुयात् ममश्रेष्ठ कुले जाता चतुर्दश वर्ष पालिता तुभ्यं विप्र मया दत्ता पुत्र पौत्र प्रवर्धनी ॥

ततः कृतैतत् कन्यादान प्रतिष्ठा सिद्धयर्थं स्वर्ण गो मिथुनंच दक्षिणां दद्यात्। ततो वरः स्वस्तीति प्रतिवचनम्। ततो वेदि दक्षिणस्यां दिशि वारि पूर्ण कलशं ऊर्ध्वं तिष्ठितो मौनिनो दृढ़ पुरुषस्य स्कन्धे अभिषेक पर्यन्तम् धारयेत। अथैनौ समीक्षयती।

परस्पर समीक्षण।

पहले पहल जिस क्षणमें वर अपने हृदयेश्वरी— प्राणप्रिया-- पत्नी को स्नेह भरा दृष्टि से उसके मुख कमल सहित नव यौवन अवस्था एवं सुन्दरता को अव लोकन कर अपने नयनों की तृष्णा शान्त करना चाहता है। वधु भी उधर प्रेम से गद्गद् हो अपनी स्नेह भरी दृष्टि से अपने प्राणनाथ एवं स्वामी के दर्शन प्राप्त कर नेत्रोंकी तृष्णा तृप्त करने को जिस क्षणके लिए अनु-कंपित रहती है। इन दोनो वधु—वर की परस्पर में देखने की तृष्णा तृप्त करने का अमौलिक ऐसा क्षण यही है। यही क्षण ज्योतिष शास्त्र के कई प्रकारों से छाना जाता है। वरने वधु की और तथा वधु ने वरकी और आंखों से स्पष्ट स्पष्ट देखनेही का नाम **परस्पर समीक्षण** है। क्यों कि शरीर में के सब इंद्रियों मेसे **नेत्र** ही एक देखने के लिए ईश्वर प्रणीत, रूप तन्मात्रा से ओतःप्रोत अद्भुत एक शक्ति है। इसीसे संसार का कार्य देखना, भालना, आदि होता है; यह सब कोई जानते हैं। इस नेत्र के अन्दर रूपतन्मात्रा नामकी की गजब शक्ती भरी है। यह विद्युतसे भी बढ़कर है। इसके बलपर शत्रूका मित्र और मित्र का शत्रू होजाता है नेत्र की ताकत जिसकी बलवान रहती है; उसके सामने अध कचरे आदमीकी देखने तक की हिम्मत नहीं होती। कहनेका तात्पर्य यह है कि देखनेका कार्य नेत्र के ही जरिये होता है। हर्ष शोक—दुःख भय— हानी— सन्ताप— अनुताप चिंता— निश्चिंतता आदि बातें बिना बोले पैछान ने का मुख्य साधन नेत्र ही है। इस लिए वधु—और वरके सम्भाषण में नेत्रमय वैदिक वैज्ञानिक रहस्य क्या है सो आपको दिखाताहुं। **परस्पर समीक्षण** विधी जब होती है, तब वर वधू के परस्पर में सम्भाषण रहस्य इस प्रकार है।

परस्पर समीक्षणमें संभाषण रहस्य ।

वधुः—हम दोनोंके नेत्रोंमें रहनेवाली अपतन्मात्रा मय विचित्र शक्ति; जो कि यज्ञ भुक् देवों द्वारा प्राप्त होती है; जिसके फल स्वरूप शुद्ध मन और वर्चस्व उँचा रहता है ऐसी देवता द्वारा प्राप्त होनेवाली प्रेरणा शक्ति; हम काम चाहने वालों के प्रति सुख शांति मय हो। अर्थात् दुगनी और चौगुनी उन्नत होतीहुई सुखकर हो। अघोरता दूर हो।

वरः— क्या ? तुझे प्रथम (पवित्राचार) सोमकी प्राप्ति होगई। पश्चात् गंधर्व (सौक्षितामधुरवाणी) की भी प्राप्ति करली। तीसरे में अग्निरूप तेजस्विता (कार्य दक्षता) को भि प्राप्त कर लिया ? जो तुम अब मनुष्यज मानव विज्ञान की कुल अवस्थासे परिपक्व होनेपर मनुष्य पति को प्राप्त करने योग्य होगई हो ?

वधुः— हाँ सोमने गंधर्व के सुपुर्द किया। गंधर्वने अग्नि को सौंपा। अब संसान प्राप्त करनेके लिए अग्निद्वारा आपके सुपुर्द होनेके योग्य यह मै हुँ।

वरः— जबकि तुम इतने गुण शील करके युक्त एवं विहार करनेके योग्य होगई हो; तो तो मुझमें अनुरक्त होकर आनन्द को भोगो। मेरेमें रहने से सब तरह की तुमारी कामना तृप्त होंगी। *

(पारस्कर. गृ. सू. १६.४)

इस प्रकार वर- वधू के परस्पर समीक्षणके आपसमें देखनेके मंत्र हैं। जिससे की परस्पर समीक्षण विधि सिद्ध और पूर्ण होती है।

---

* यहां सिर्फ मंत्रार्थ मात्र किया है हमारा निजका भाष्य अलग छप रहा है.

\+ रोम कालेतु सम्प्राप्ते सामो भुंकेतु कन्यका।
रजोदृष्टवातुगंधर्वा कुचौदृष्वातुपालकः॥

संवर्त—

ऐसे पवित्र और उज्वल प्रथा का मारवाड़ी समाजमें विद्वानों और रुढी भक्त लोगोंनें क्या दुर्दशा करके विधिका सत्यानाश कर दिया देखते रोमांच होता है। कहां तो वेदकालील पुरानी आपसमें देखनेकी आदर्शयुक्त प्रथा और कहां आजकी घुंघट के अन्दर आंख मींदकर होनेवाली आधुनिक लठ्ठबाजी की प्रथा उँफ ! अफसोस !! दुःख- महादुःख !!!

क्या मंत्र केवल पुरोहित को रटने और पारायण करने के ही रहते हैं। कि कुछ विधि करनेके। विवाह की कुल पुस्तकों में अर्थात् भारत वर्ष भरके कोने कोने तक की छपी हजारों विवाह पद्धति हैं. किंतु **परस्पर समीक्षणम्** परस्पर समीक्षण के विधि बिना कोई पुस्तक नहीं है। किंतु अपसोस है कि आज काल के रूढ़ि भक्तों ने इसे मटियामेट कर दिया आदमी रीति रिवाज में कम ज्यादा कर सकता है किंतु; विधि को हटाने का हक्क मनुष्यको नहीं है। फिर इस विधि की मट्टी पलीत क्यों ?

मोगलों के भयसे, मुसलमानों के उत्पातों से, यवनों के अत्याचारोंसे केवल हमारी जन्देऊ ही नहीं तोड़ी गई; वरना वेद कालीन विधि विधान भी तोड़ मरोड़ कर खाख़ कर दिए ? कहांतक कहें; मुसलमानों के देखा देखी यह पड़दावाली कु प्रथा हमारे में घुसगई।

मोगलों के राज्यमें अविवाहित नव यौवना खुब सुरत कोई लड़की दिखी कि वे लोग उड़ाकर लेजातेथे। और कोई विवाहित हुई तो उसको छोड़ दिया करते थे। यही शीघ्र विवाह और पड़दा प्रथा का पुंछड़ा लगानेवाली ऐतिहासिक गरज प्रत्यक्षही दिख रही है। इसीसे उस समय के ज्ञानवान पंडितों को उस जमानेके अनुसार व्यवस्था स्थिर करनी पड़ी। उस समय के लिए उन व्यवस्था करने वाले विद्वानों की हम भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। और करना हमारा कर्तव्य है। क्यों कि वे यदि उक्त समयोचित व्यवस्था नहीं करते तो आज हमारी बड़ी दुर्दशा होती।

किंतु अब जमाना वह नहीं है। कृतीका युग आगया है। अतः अब मोगलों के भयसे बीचमें बनी हुई नवीन व्यवस्था को हटाकर, वैदिक पुराने

विधि विधान के सुमार्ग ही पर चलना श्रेष्ठ है । अतः अब इस विषयको ज्यादे न बढ़ाकर इतना ही कथन बस है कि **परस्पर समीक्षण** विधि वधु–वर के पड़दा न रखकर करना ही आदर्शता एवं विधिका साक्षात् नमूना है । अन्यथा घूंघट के ओटमें दुर्लक्ष्य ता से मंत्रों के पारायण से परस्पर समीक्षण कराना अविधितो है ही; किंतु इससे वह मनुष्य वेदाज्ञा न मानने का पातकी होता है । *

परस्पर समीक्षण विधि ।

अत्रावसरे वधु–वर करालंभे वधूः कर धृत पुष्प ग्रथित वरण मालां वर कंठे समर्पयेत् । तद् : वरोपि कर धृत पुष्प ग्रथित माला वधु कंठे समर्पयेत् ॥ सं. भा. २४७

इस प्रकार वधू वर के हस्तांदोलन के पश्चात् गांवके–बाहरके सब लोग (पुष्प) अक्षता आदि इनके अंग पर वर्षाव कर हार्दिक आशिर्वाद प्रदान करते हैं-दीर्घायु हो ! उत्तम वैभवशाली हो ! ! दम्पती की अखण्ड प्रीति बढ़ो ! ! !

प्रतिष्ठासु प्रतिष्ठितमस्तु । दम्पत्योरविच्छिन्ना प्रीतिरस्तु ।

आदि आशिर्वाद प्रेम में गद् गद् होकर प्रदान करे । ×

---

* अधिक पड़दें के भक्त जिनसे पड़देका मोह छूटताही नहीं । वे लोग वधू–वर का चोरो ओर से कपड़ा आड़ा करके पड़दमें तोभी समिक्षण करावे । ऐसी हमारी सूचना है ।

ग्रंथकर्ता.

× इस कृत्य के होजाने पर कन्या पिता विवाहोत्सव में आये अतिथि मेहमानों का तांबुल आदिसे सत्कार स्वागत करे । जो पूज्य और प्रतिष्ठित हों उनोको आशिर्वाद वधूवर को प्रदान करने के हेतू जरूर आना होता है । उनका भी पूरा सत्कार करे ।

इसके अनंतर वर, वधू को वस्त्र द्वय प्रदान करता है–जिसमे पहिले साडी इत्यादि नीचेके पहरने का वस्त्र इस मंत्र को पढकर.

जरांगच्छ परिधत्स्व वासोभवा कृष्टीनामभि शस्तिपावा। शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननु संव्ययस्वा युष्मतीदं परिधत्स्व वासः।

वस्त्र प्रदान करता है। उसका वह शिरसा वंदन करके स्वीकार करती है। पश्चात् पुनः दुसरा उपर का वस्त्र वर वधू को प्रदान करता है–तब यह मंत्र कहकर देता है किः—

या अकृन्तन्नवयं या अतन्वत। याश्च देवीस्तन्तू नभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः।

इस मंत्र को कह दुसरा ऊपर का वस्त्र (कंचुकी– कबजा– पोलका आदि) देवे। अनंतर वधुवर को भौजाई आदि कज्जल आंख मे लगावे उसका मंत्र यहः—

अथैनौ समञ्जयति। समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ। संमा तरिश्वा संधाता समुदेष्ट्री दधातु नौ।

कहकर अञ्जन आंखमे लगावे। पश्चात् वधु पिता इन दोनों को आपस मे यानी परस्पर में देखने की आज्ञा करे। तब यह दोनो परस्पर में यह मंत्र कहते हुए देखें।

परस्पर समीक्षणं। अथैनौ समीक्षयति।

वधुः—अघोर चक्षुर पतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देव कामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।

वरः—सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः। तृतीयोऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः।

वधुः--सोमोऽददद्गंधर्वाय गन्धर्वोददद्ग्नये। रयिं च पुत्राश्चादाद्-
ग्निर्मह्यमथो इमाम् ।

वरः--सानः पूषा शिवतमामैरय सा न ऊरू उशती विहर।
यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपं यस्यामु कामा बहवो निविष्ठ्या।

इसके पश्चात् वर जल लेकर संकल्प करे—

अद्य पूर्वोच्चरित गुण विशेषण विशिष्टायां शुभपुण्य तिथौ (आदि देश कालौ संकीर्त्य) पाणिम् पतिगृहीतायाम् अस्यां वध्वां भार्यात्व सिद्धये विवाहे होमं करिष्ये - इति संकल्प्य ।

ततोऽग्नेअर्दक्षिणतः ब्रह्मासनंदत्वा तदुपरि प्रागग्रान् कुशान् आस्तीर्य । ब्रह्मणोग्नि पर्यन्तं नैर्ऋत्यात् वायव्यंतं– वायव्यादीशानांतं । अग्नितः प्रणिता पर्यन्तम् । अग्नि ऋतरतः प्रणितापात्रे उदकं पुरतःकृता प्रोक्षणी पात्रे निधाय यथा सादित वस्तु सेचनं । श्रुवः प्रतपनं । ततः-दक्षिणतोनिदघात् । अग्नःउत्तरोत्तर क्रमेण आज्यस्थाली । सम्मार्जन कुशा । उपयमन कुशा । समिधस्तिस्रः । आज्यमः । पूर्णपात्रम् । आज-स्याग्न अवतारणम । निरसनम् । ततोघृताक्ता समिधस्तिस्रःधृत्वा उत्तिष्टन् मनसा प्रजापते ध्यायन् घृताक्ता समिधः तिस्रः क्षिपेत ।

ॐ.मनसा प्रजापते स्वाहा इदं प्रजा पतये नमम । ॐ.इन्द्राय स्वाहा इदं इन्द्राय नमम । ॐ-अग्नये स्वाहा । इदमग्नये नमम ॐ-सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय नमम । ॐ भूस्वाहा इद् मग्नये नमम । ॐ भुवः स्वाह इदं वायवे नमम । ॐ स्वःस्वाहा इदं सूर्याय नमम ।

त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽअवयासि सीष्ठाः ॥ यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वाद्वेषा ऽसि प्रमुमुग्ध्यस्म त्स्वाहा ॥ ४ ॥ इदमग्नि वरुणाभ्यां नमम ।

वेद मंत्रों का अर्थ करनेकी जो हमने पद्धति खोज निकाली है; उसके अनुसार सब विवाह विधिके मंत्रों का अर्थ शीघ्रही प्रकाशित करने वाले हैं ।

सत्वन्नोऽअग्ने वमोभवो तीनेदिष्ठो अस्या उष मो व्युष्टौ। अवं यक्ष्वनो वरुण ँ रराणो वोहि मृडीक ँ सुहवोन एधि स्वाहा॥ ५॥ इदमग्नि वरुणाभ्यां नमम।

अयाश्चाग्नेस्यनभि शस्तिपाश्च सत्यमित्व मयाऽअसि। अयानो यज्ञं वहास्य यानो धेहिभेषज ँ स्वाहा॥६॥ इद मग्नये अयसे नमम।

येते शतं वरुणये सहस्त्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। ते भिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्क्का स्वाहा॥ ७॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्के भ्यश्च नमम।

उदुत्तमं वरूण पाश मस्म दवा धमं विमध्यम ँ श्रथाय॥ अथा वयमादित्य व्रते तवानागेसोऽअदितये स्याम स्वाहा॥ ८॥ इदं वरणायादित्यादितये च नमम॥

अथ राष्ट्र भृत होमः

१ ऋताषाड्ऋत धामाग्नि गंधर्वः सनः इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदमृतसाहे ऋतधाम्ने अग्नये गंधर्वाय नमम॥ १॥

ऋताषाड् ऋत धामाग्नि गंधर्व स्तस्यौषधयोप्सरसो मुदोनाम ताभ्यः स्वाहा। इदमोषधिभ्योप्प्सरोभ्यो मुद्भयो नमम॥ २॥

स ँ हितो विश्वसामा सूर्यो गंधर्वः सन इदम् ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदं स ँ हिताय विश्व साम्ने सूर्याय गन्धर्वाय नमम॥ ३॥

स ँ हितो विश्वसामा सूर्यो गंधर्वस्त तस्य मरीचयोप्सरस आयुवो नाम ताभ्यः स्वाहा॥ इदं मरीचिभ्योप्सरोभ्य आयुभ्यो नमम॥ ४॥

सुषुम्णः सूर्य राश्मि श्चंद्रमा गन्धर्वः सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं सुषुम्णाय सूर्य रश्मये चन्द्रमसे गधर्वाय नमम ॥ ५ ॥

सुषुम्णा सूर्य रश्मिश्चंद्रमा गंधर्व स्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भे कुरयो नाम ताभ्यः स्वाहा इदं नक्षत्रेभ्योप्सरोभ्यो भे कुरिभ्यो नमम ॥ ६ ॥

इषिरो विश्व व्यचा वातो गंधर्वः सन इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गंधर्वाय नमम ॥ ७ ॥

इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्व स्तस्या पोप्सरस ऊर्जो नाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदमद्भयोप्सरोभ्य उर्ग्भ्यो नमम ॥ ८ ॥

भुज्यु सुपर्णो यज्ञो गंधर्वः सन इदम् ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय गंधर्वाय नमम ॥ ९ ॥

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गंधर्व स्तस्य दाक्षिणा अप्सरस स्तावा नाम ताभ्यः स्वाहा । इदं दाक्षिणाभ्योप्सरोभ्य स्तावाभ्यो नमम ॥ १० ॥

प्रजापति र्विश्वकर्मा मनो गंधर्वः सन इदम् ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं प्रजा पतये विश्व कर्मणे मनसे गन्धर्वाय नमम ॥११॥
पजापतिर्विश्वकर्मा मनो गंधर्व स्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम ताभ्य-स्वाहा । इद मृक्सामेभ्योप्सरोभ्य एष्टियो नमम ॥ १२ ॥

अथ जया होमः ।

चित्तंच स्वाहा इदं चिताय ॥१॥ चित्तिश्च स्वाहा इदं चित्यै॥२॥ आकूतंच स्वाहा इदमाकूताय ॥३॥ आकूतिश्च स्वाहा इदमाकूत्यै ॥४॥ विज्ञातंच स्वाहा इदं विज्ञाताय ॥५॥ विज्ञातिश्च स्वाहा इदं विज्ञात्यै॥६॥ मनश्च स्वाहा इदं मनसे ॥७॥ शक्वर्यश्च स्वाहा इदं शक्वरीभ्यो ॥८॥ दर्शश्च स्वाहा इदं दर्शाय ॥९॥ पौर्ण मासंच स्वाहा इदं पौर्ण मसाय॥१०॥ बृहच्च स्वाहा इदं बृहते ॥११॥ रथं तरंच स्वाहा इदं रथं तराय ॥१२॥

प्रजापति र्जयानिंद्राय वृष्णे प्रयच्छ दुग्रः पृतना जयेषु ॥ तस्मै विशः समन मंतः सर्वाः स उग्रः सऽइहव्यो बभूव स्वाहा ॥ इंदं प्रजापतये जयानिंद्राय नमम: ॥१३॥

अथाभ्यातान होमः ।

१ अग्निर्भूताना मधिपति समावत्वास्मिन्ब्रह्म ण्यस्मिन्क्षत्रे स्यामा शिष्यस्याम् पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देव हूत्यां॰ स्वाहा । इदमग्नये भूतानां अधिपतये नमम ॥ १ ॥

२ इन्द्रो ज्येष्ठानाम् अधिपति —

प्रत्येक मंत्रमें निम्नलिखित पाठ की पुनः आवृत्ती करना.

“ समावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रे स्यामा शिष्यस्यापुरो धाया मास्मिन्कर्मण्यस्यां देव हूत्यां ॰ स्वाहा ”

इदमिंद्राय ज्येष्ठानामधिपतये नमम ॥ २ ॥

३ यमः पृथिव्या अधिपतिः " समा " इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये नमम ॥ ३ ॥ (दक्षिण पात्रांतरे त्यागः) प्रणितो दकोपस्पर्शः

४ वायुरंतरिक्षस्याधिपतिः " समा " इदं वायवेन्तरिक्षस्याधिपतये नमम ।

५ सूर्यो दिवोधि पतिः " समा " इदं सूर्याय दिवोधिपतये नमम ।

६ चन्द्रमा नक्षत्राणामधि पतिः " समा " इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये नमम ।

७ बृहस्पति र्ब्रह्मणोधिपतिः " समा " इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोधिपतये नमम ।

८ मित्रः सत्याना मधिपतिः " समा " इदं मित्राय सत्यानामधिपतये नमम ।

९ वरुणोपामाधिपतिः " समा " इदं वरुणायापामधिपतये नमम ।

१० समुद्रः स्त्रोत्यानामधिपतिः " समा " इंद समुद्राय स्त्रोत्यानामधिपतये नमम ।

११ अन्नं ऽ साम्राज्यानामाधिपतिः " समा " इदं अन्नाय साम्राज्याना मधिपतये नमम ।

१२ सोमऽऔषधीनामधिपतिः —" समा " इदं सोमाय औषधीनां अधिपतये नमम ।

१३ सविता प्रसवानामधिपतिः " समा " इदं सवित्रे प्रसवाना मधिपतये नमम ।

१४ रुद्रः पशूनां अधिपतिः " समा " इदं रुद्राय पशूनामधिपतये नमम । (इशान्यां त्यागः) उदकोप स्पर्शः

१५ त्वष्टा रूपाणामधिपतिः " समा " इदं त्वष्ट्रे रूपाणामधि-
पतये नमम ।

१६ विष्णुः पवर्तानां अधिपतिः " समा " इदं विष्णवे पर्वताना
माधिपतये नमम ।

१७ मरुतो गणानां अधिपतिः " समा " इदं मरुद्भयो गणानामधि-
पतिभ्यो नमम ।

१८ पितरः पितामहाः परेवरे ततास्तता महाः " समा " इदं
पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योवरेभ्यः ततेभ्यः तता महेभ्यश्च
नमम । दक्षिणाग्न्योर्मध्ये त्यागः उदकोपस्पर्श ॥

अग्निरित्यादि पंचकं ।

अग्निरैतु प्रथमो देवता ना ५ सौस्यै प्रजां मुंचतु मृत्यु पाशात् । तदय
५ राजा वरुणोनुमन्यतां यथेय ५ स्त्री पौत्र मघंन रोदा त्स्वाहा ॥ इद
मग्नये नमम ॥१॥

इमामग्निस्त्रायतां गार्ह पत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः । अशून्यो
पस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानंद मभि प्रबुध्यतामिय ५ स्वाहा ॥ इद
मग्नये नमम ॥२॥

स्वस्तिनो अग्ने दिवा पृथिव्या विश्वानि धेह्ययथाय जत्र ॥ यदस्यां मयि दिवि
जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्र ५ स्वाहा ॥ इद मग्नये नमम ॥३॥

सुगन्तुपन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरन्न आयुः ॥ अपैतु मृत्यु
रमृतंम आगाद्वैवस्वतोनोऽभयं कृणोतु स्वाहा ॥ इदम् वैवस्वताय नमम ॥ ४ ॥
(दक्षिण पात्रे त्यागः) (वध्वक्ष्णोर्वस्त्रपटं प्रक्षिप्य तूष्णीम् ॥

परं मृत्यो अनुपरेहि पंथां यस्ते अन्य इतरो देव यानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मानः प्रजा ँ रीरिषो मोत वीरान्स्वाहा ॥ इद मृत्यवे नममेति अग्नौ त्यागः ॥५॥ उदकोप स्पर्शः (यहां वर का हवन कृत्य पूर्ण हुआ) (अब कन्या लाजा हवन करती है ।)

लाजो होम विधिः

यहां लड़कीका भ्राता, शमी और पलाशके मिश्रित पत्तोमें लाजा मिला-वह सब एक सूपड़ेमें लेकर कन्या और वर के पीछे भागमें खड़ा होजाय और सूपड़ेमें उसके चार विभाग करे । उसमें का एक विभाग अंजली से कुमारीके अंजुलीमें देवे—

कुमार्या भ्राता शमी- पलाशमिश्राँ- लाजानञ्जलिनाञ्जलावाव-पति ॥ १ ॥ ताञ्जुहोतिस ँ हतेन तिष्टती ॥

कुमारी अंजुली करके उस लाजाको अपने भ्राताके पाससे अपने अंजुलीमें लेकर उसमेंसे उसके तीन विभाग अंजुलीहीमें करके; एक एक मंत्रके साथ एक एक भाग हवन करती जाय । ऐसे तीन मंत्रोकी तीन आहुती में अञ्जली के तीन भागों को डाल देवे । जैसे—

१ **अर्यमणं देवं कन्याऽऽग्निमयक्षत । सनो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा ।** (एक हिस्सा होमे दो २ हिस्से रखे.)

२ **इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्ताम् ज्ञातयो मम स्वाहा ।** (आधा हिस्सा होम देवे आधा रखे)

३ **इमाँ ल्लाजाना वपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव । मम तुभ्यंच संव-ननं तदग्निरनुमन्यतामिय ँ स्वाहा ॥** (अंजली मेका कुल हिस्सा होमे)

इन तीनों मंत्रों के साथ तीनोंभी हिस्से हवन करे। पश्चात् वर कुमारी का सीधा हात अपने सीधे हात से अंगुठे सहित पगड़ कर अग्निको नीचे लिखा मंत्र कहते हुए प्रदक्षिणा करे

वरः—गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मयापत्या जरष्टिर्यथा सः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः। अमोह मस्मि सा त्वꣳ, सात्वमस्यमोऽअहम्। सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेहि विवहावहै सह रेतो दधावहै प्रजां पजनया वहै पुत्रान्विदावहै बहून् ते सन्तु जर दष्टयः संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ श्रृणुयाम शरदः शतम् ।३।६।

जिस समय वर, वधूका अंगुठे सहित हात पकड़ कर खड़ा होता है उस समय वर अपने गंभीर वाणीसे स्त्रीका गौरव करता है सो प्रसंग बहुत रहस्य भरा होनेसे उसका सारभूत अर्थ पाठकों को दिखाताहुँ। अंगुठे सहित हात पकड़ कर वर स्त्रीके प्रति कहता है।

वर:– हे सुभगे तुमारे इस हातके ग्रहणसे तुमारे और मेरे पर; आकाश में स्थित भग– अर्यमा– सविता देव की कृपा ही तुमको मुझसे और मुझको तुमसे मिला रही है। अपने दोंनो का मिलन सौभाग्य योग इनी देवों की कृपासे प्राप्त हुआ है। इस लिए मेरा जो कुछ भी है सो सर्वस्व तूं है। इसी तरह तेरा सर्वस्व मै हुँ। तेरा मेरा इतना घनिष्ट संबंध है; कि वह कभी हट नहीं सकता। यानी वह इतना घनिष्ठ है, कि मै साम वेद हुँ; तो तूं ऋग्वेद है। मै आकाश हुँ तो तूँ पृथ्वी है।क्योंकि इसी लिए तुमारी हमारी प्राप्ति हुई है।अतः तुम मेरे सहित रेतको धारण करने वाली होगी; उससे प्रजा उत्पन्न होंगी। फिर पुत्रादिकों के विवाह करने होंगे। कहाँतक कहुं बहुतसे कार्य करने होंगे। अतः हे प्रिये अपुन प्रसन्न मन से युक्त हो के (नेत्रोंसे) सौ शरद् देखें। सौ शरद् तक जीवें। और वैसेही सौ शरद् तक (कर्णेंद्रियसे) सुनें। ऐसा अभय उक्त देवों सेही प्राप्त होगा।

यो कह कर वर उसको अग्नीके उत्तर तरफ एक सिला रखकर नीचे लिखे मंत्र से—

अथैनामश्मानमारोहयति उत्तरतो अग्नेः दक्षिण पादेन ।

स्त्री को खड़ी कराता है। और नीचे का मंत्र कहता है:—

आरोहे ममश्मान मश्मेव त्व ँ स्थिरा भव। अभितिष्ट प्रतन्यतो वबाधस्व पृत नायत। इति।

इस मंत्रसे खड़ी करनेके पश्चात् फिर गाथा गान करता है। उस समय स्त्री की तारीफ़ करता हुवा नीचे का मंत्र कहता है।

अथ गाथां गायति सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनी वती। यां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः यस्यां भत ँ समभवद्यस्यां विश्व मिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणा मुत्तमं यशः ॥२।७॥

पश्चात् अग्नीके चारो तरफ़ परिक्रमा अग्रेवधु पश्चात वरः इस क्रमसे करता है प्रदक्षिणा का मंत्र नीचे कहा है।

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्सूर्या वहतु ना सह। पुनः पतिभ्यो जायां दाग्ने प्रजया सह।

इस मंत्रसे वधु ओर वरने अग्नीकी प्रदक्षिणा करना। ठीक इसी तरह दो बार ओर फिर कन्या के हात से पूर्वोक्त क्रम के मुताबिक लाजा होमको आरंभ कर आग्निकी प्रदक्षिणा तक सब विधि करना। अर्थात् तीन बार ऐस करके चौथी बार:—

चतुर्थं ँ शूर्प कुष्ठया सर्वां लाजानावपति भगाय स्वाहेति ॥

सिर्फ़ भगाय स्वाहा इतना कह कर कुमारी अग्निमें शूर्प मेकी सब लाजा शूर्प कोणसे डाल देवे। आगे वरको कर पीछे वधू इस क्रमसे चौथी प्रदक्षिणा दे। पश्चात् वर वधू पूर्व वत आसन पर बैठ जाँय।

सप्तपदी विधि.

अग्नि प्रदक्षिणा होजाने के पश्चात् वर जब वधू को उत्तर की ओर से घुमाकर वाम भाग में लेता है। तब वह अपनें पग पग पर ऐसे सात ठहराव यानी [कौल] शर्तें पेश करती है। जिन शर्तों को वर अग्नि के और विष्णु के साक्षिसे कबूल करता है।

अथैनामुदीची + सप्त पदानि प्रक्रामयतिः—

जिन शर्तों को कन्या कबूल कराती है वेशर्तें ये है

एकमिषे। द्वे ऊर्जे। त्रीणि रायस्पोषाय। चत्वारी मायो भवाय। पञ्च पशुभ्यः। षड् ऋतुभ्यः। सखे सप्तपदा भव सा मामनु व्रता भव॥ १॥

स्वामिन् पहिली शर्त तो यह है, कि मेरा तुमरा साथ सहवास नहीं टूटे

एकमिषे अर्थात् सदैव आपहम ईश्वरका भय रखते हुए रहें। खावें। पीवें। वास करे। जिस प्रकार शरद् ऋतु के दो मासमें; पृथ्वी को शस्य शालिनी बनाने को अप्रतिम गुण है; उसी प्रकार मुझको सब तरह से सुखवती करनेमें तुम गुण को धारण करे रहो इस प्रणको पालन करोगे! **वरः—विष्णुस्त्वा नयतु**। विष्णु साक्षी से कहता हुँ पालन करुंगा।

दुसरी शर्त यह है कि मेरी ऐसी दशा नहो जो अन्नान्न दशा होजाय।

द्वे ऊर्जे अर्थात् अन्न वस्त्र—सम्पत्ति, पैसा, टका आदि सब पर मेरी मालकी न हटाई जाय। सादा ऊर्जित अवस्थामे मैं रहुँ। जिस प्रकार हेमंत आतेही किसान की वह ऊर्जित अवस्था लाता है। ठीक उसी

+ इषः और ऊर्जः यह आश्विन और कार्तिक महिनेके नाम है। वेदोंमें इष= पिन्वमानः और ऊर्ज= अन्नवान् कहा है। सहस्वान और ओजस्वान एवं सहीयान और सहमान भी इनीका नाम है। (देखो युगपरिवर्तन पेज ४४.)

प्रकार मेरी ऊर्जित अवस्थाके ऊपर ध्यान रख कर दृढ़ व्रती रहो इस दुसरे प्रण का पालन करोगे ! **वरः—विष्णु स्त्वानयतु** विष्णु साक्षीसे कहता हुँ दुसरा प्रण भी तेरे लिये पालन करुंगा ।

त्रीणि रायस्पोषाय। तीसरी शर्त यह है कि आपने आज तक पैसा चाहे जहाँ कमाया या, चाहे जहां रखा; चाहे जो किया किंतु अब कमाकर जो भी कुछ लावोगे उसपर मेरा पूर्ण हक्क रहे। जो कुछ भी खर्च इत्यादिका कार्य हो सो बिना मेरी सलाह के न किया जाय। इस तीसरे प्रण का पालन करोगे ! **वरः—विष्णु स्त्वानयतु** । विष्णू साक्षी से कहता हुं तीसरा प्रणभी तेरे लिये पालन करुंगा ।

चत्वारि मायो भवाय चवथी शर्त यह है कि मेरे से उत्पन्न हुई कुल सन्तति फिर पुत्र हो या पुत्री सब समान हक्क को सम्पत्तीके दायभाग के मालिक होंगे । अर्थात् मेरी संतति आप की सम्पत्ति की दाय भागकी मालिक हों । इस चौथी शर्त का पालन करोगे ! **वरः-विष्णु स्त्वानयतु** । विष्णु साक्षी से कहता हुँ चौथी प्रण भी तर लिये पालन करुंगा !

पंच पशुभ्यः— पांचवी शर्त यह है कि धार्मिक कार्य तप– तीर्थयात्रा– होम– यज्ञ धर्मशाला– कूवा– बावडी– व्रत– उद्यापन आदि जोभी धार्मिक कृत्य करो सो बिना मेरे उपस्थिति के न किए जाँय । अर्थात् इन कामों मे मेरी उपस्थिति या मंजूरी ली जाय। इस पांचवी शर्त का पालन करोगे ! **वरः—विष्णु स्त्वानयतु** । ईश्वर साक्षीसे कहता हुं तेरे लिये निबाहूंगा ।

षड् ऋतुभ्यः छट्टी शर्त यह है कि व्यापार के निमित्त या अन्य कार्य के निमित्त परदेश भलेहां जाँय । किंतु मेरा ऋतु कालमें तो भी स्वीकार होना । अर्थात् मुझे ऐसा त्याग कर, न चले जाँय जो मै बरसों ही तड़फती रहुँ । और आप अपना दुसरे के स्नेह पाशमें फँस जाँय । इस लिए एक ऋतु भी आपके बिना मै सूनी न रहुँ इतना; मेरे याद गिरीका स्थल आपके ह्रदयसे सूना न किया जाय । इस छट्टी शर्तको निबाहोगे ? **वरः—विष्णु स्त्वानयतु** । विष्णु साक्षी से कहता हुं तेरे लिये निबाहुँगा ।

सातवीं शर्त यह है कि मुझसे आपका जितना भी वर्ताव रहे वह सब

सखे सप्तपदा भव । मित्रत्व की तरह होना चाहिए। जैसा मित्रके लिए मित्र परस्पर में घनिष्ट मित्रता का व्यवहार रखते हैं। वही प्रकार आपके मेरे बीचमें होना चाहिए। अर्थात् चार लोगों मे अनादर करना-मारना या ताड़ना करना आदि दुष्ट कृत्यों के प्रति हृदय में स्थल न दिया जाय यह सातवीं शर्त निबाहोगे? **मामनु व्रता भव। वरः-विष्णु स्त्वानयतु।** विष्णु साक्षी से कहता हूं की तुम्हारे लिये निबाहूंगा !

आदि उपर कही हुई सात शर्तों का सदैव पालन मेर अनुकूल आपकी ओर से हो ! उत्तर में वर प्रत्येक शर्त के पिछे कहता है:—

विष्णुस्त्वा नयतु । " विष्णु की साक्षीसे कहता हुं कि तुम्हारी इन शर्तोंको पूर्णतया तुम्हारे लिऐ पालन करुंगा। अर्थात् निबाहूंगा। तोडूँगा नहीं।"

इत्यादि सात शर्तो की कबूली विष्णु साक्षीसे वर करता है। इस पश्चात् पानी के कलश को कांधेपर लेकर एक पुरुष दक्षिण की और खड़ा रहता है। और एक उत्तर की और। ऐसे दोनो के कलशों का जल लेकर वर वधूके अंगपर व वधू वर के अंगपर ऐसा परस्पर में अभि षिंचन करते हैं।

" निष्क्रमण प्रभृत्युद कुम्भः स्कंधे कृत्वा दक्षिण तोऽग्रे वाग्यतः स्थितो भवति ॥ ३ ॥ उत्तरतः एकेषां ॥ ४ ॥ तत एनां मूर्द्धन्य भिषिञ्चति । "

अभि षिंचन आम्र पल्लव से करे—और नीचा लिख मंत्र कहता जाय:—

आपः शिवाः शिवतमाः शांताः शांततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ।

आपोहिष्टा मयोभुवः। तान ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे ॥

योवः शिव तमोरसतस्यभाजयतेह नः उशतीरिव मातरः ॥

तस्माअरंगमामवो। यस्यक्षयाय जिन्वथ। आपोजन यथाचनः ॥

इस अभि शिञ्चन के पश्चात् नीचे लिखे मंत्रको कहकर सूर्य दिखावे

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात् शुक्र मुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ँ श्रुणुयाम शरदः शतं प्रब्रावाम शरदः शतमदीनः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।

इस मंत्रको कह वर–वधु दोनों को सूर्य दिखावे और सूर्य को नमस्कार करें । अनंतर वर वधुका सीधा हात लेकर अपने हृदय पर लगावे और नीचे लिखा मंत्र कहे ।

मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापति ष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ।

वरः—प्रिये ! मेरे उद्देशों को तेरे हृदयमें धारण कर । मेर चित्तकी तरह निर्मल तेरा चित्त हो । मेरी वाणी को केवल एक सच्चेमन से पालन कर इसी लिये प्राजापतिने तुझको मेरे लिये नियुक्त किया है । ऐसा कह कर आदर पूर्वक नव वधु को वर सुन्दर आसनपर बैठाता है । और इसकी पूजा करता है ।

अर्थात् इसके बालों की मांगमे [सेंदूर आदि] कुछ रंगीली वस्तु से केश शुशोभित सुंदर करता है । और फिर नीचे लिखा मंत्र कहता है ।

सुमंगलीरियं वधूरिमा ँ समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं विपरेतन ॥ ९ ॥

इस मंत्रसे वरने वधुके केश सँवार ना और सिन्दूर लगाना कहा है । * अब यह विधि समाप्त हुई । आगे गांवके लोग जो सूचना करे उस [**ग्राम वचनंच कुर्युः**] मुताबिक उपस्थित पूज्यपाद आदि लोगों को प्रणाम करना आदि कहा है ।

* यहां भी पड़दा प्रथा का ऋषि लोगों को स्वप्न तक नहीं था । नहीं तो घुंघट के ओढमें कैसा वर सेन्दूर लगा सकता । इसको पड़दा प्रथाके भक्त अवश्य सोचें ।

हाँ एक बात रह गई । यहां तो उपर सूर्य दिखानेका कहा है । किंतु दिनके चौथी प्रवहर में विवाह हो और किसी कारण वशात् सूर्य का अस्त होगया हो तो–ध्रुव को देखे ऐसा कहा है । **अस्त भिते ध्रुवं दर्शयति**– यहां गृह्य सूत्रकार ने रात्र शद्ब नहीं कहा । बड़ा अच्छा हुवा नहीं तो रात्री के विवाह करने वाले कुछ आधार पासकते थे अतः यहां उनकी बात बिलकुल निराधार होगई । क्यों कि–यदि अस्त होजाय, तो ध्रुव दिखाना कहा है । इसीसे नीचे ध्रुवका मंत्र दिया है ।

ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि ध्रुवैधिपोष्ये मयि मह्यं त्वादाद बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतम् ॥ १९ ॥ सा यदि न पश्येत् पश्यामित्येव ब्रूयात् ॥ २० ॥

विवाह विधिके पश्चात का कार्य

उपरोक्त कही हुई कुल विवाह का विधि विधान परिपूर्ण होनेके पश्चात् वधु–वर ने अपने से पूज्य और बड़ोका आशिर्वाद ग्रहण करना । पश्चात् वधु पिता ने भोजनकी तयारीमे लगना ।

वधु पिता की ओर से भोजन की सब व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए

सह भोज तथा ब्याणा भात ऊर्फ बढ़ार ।

जिसमे सब रसोई नित्यके भोजन की हो । बिशेष नहीं । जैसेकी–लड्डू–जलेबी, घेवर, गुलाब जामून, रसगुल्ला, फेणी प्रभृति रसीली और जीभको ललचानेवाली चीजों की कोई आवश्यकता नहीं । क्यों कि इसके बीचमें आडंबर का वास है । इस लिये यह बात वास्तव में आदर्श युक्त नहीं है । यहां तो आदर्श युक्त वहीं होंगी, जो गरीब सेभी गरीब नित्य प्रति जिन चीजों को अहर्निष काम में लाता हो । जैसे—

दाल–चावल–कढ़ी–फलका (रोटी) एक दो *साग बस इतनाही* सामान बस है । क्यों कि ब्याणा भात ही का मतलब है । कि विवाह के पश्चात् का चावल का भोजन । फिर व्यर्थ ही रसभरी चीजों के उलझन में और खर्च में डालकर किसी को दिक करना; कभी आदर्श हो सक्ता है ? नहीं।

इसमें दो बात का निष्पन्न निकला है । एक तो यह कि, भात (चांवल) काममे आनेसे वहां उतने लोग ही विवाहमें जाते हैं। जितने सह भोजी है । और दुसरा घर वाले को अधिक तंग नहीं होना पड़ता । अतः ऐसा नित्यके भोजन वस्तु ओंको ही व्यवहार में लेना ही आदर्श ताके पात्र है।

भोजके पश्चात् बरातियोंका प्रयाण ।

भोजन विधि उरक जाने के पश्चात् कन्या को जो जो वस्तु (समर्पण) देना हो सो देकर वर वधू का पूजन सत्कार करे । और वधु पिता इन दम्पती को अपने घर जाने की परवानगी देवे । बस अबतक जितनी आदर्ष बातें विवाह के लिये जो अत्यावश्यक थी सो दिखादी ।

इसके अलवा विवाह के लिये आई बरात को तीन–चार–पांच कहुं कहुं तो आठ आठ नौ नौ दिन बरात का रखना–जूवा जूई–कंवर कलेवा–रंग बरी–यानी वर के और वधु पक्षके और से होने वाले परस्पर के प्रशंसा स्तोत्र–आदि बाते वेद तथा गृह्य सूत्र आदि में न होनेसे अवैदिक हैं। इसलिये उक्त बाते सर्व थैव निराधार होने से त्याज्य है ।

थोड़े से में कहने का सारांश यह है कि जिसको वैदिक आदर्श विवाह करना हो; वह हमारी बताई आदर्श बातों को न भूले । कई लोगों को जिनको की आजतक कालिमें पैदा हुई कुप्रथा ओंने घेर रखा है, उन को तो यह नई दिखेगी सहीं । किंतु यह बताई हुई आदर्ष प्रथा नई नहीं है; तो वेद कालीन आदर्ष युक्त प्राचीन शुद्ध एवं पवित्र परिपाटी जो कुछ भी आदर्श मानी गई है सो यही है । अतः ऐसे सत्य वेदकालीन उत्तम सिधान्तों को अपना कर आशा है विवेकी विद्वान आदर्श कार्य करनेमें अवश्य ही अग्रसर होंगे ।

कन्या पक्षकी ओर से

केवल बारह घंटेमें परिपूर्ण होनेवाले विवाह के तमाम कृत्य।

समय की सूचना.	संक्षिप्त विवरण
विवाह काल के छे घंटापूर्व	गणपति पूजनसे नांदिमुख पूजा तक के तमाम पूजन विधि।
विवाह काल के पांच घंटा पूर्व	मण्डप पूजन–स्तंभ पूजन दिग् रक्षणादि कुल कार्य।
विवाव काल के चार घंटा पूर्व	बरातियों का आगमन, नगर प्रवेश समय में स्वागत।
,, ,, तीन घंटा पूर्व	सुभीतेकी जगह पर बारतियों का उतारना जलपानादि।
,, ,, दो घंटा पूर्व	सीमान्त पूजन ऊर्फ सँयाला, घर आनेके लिए वरको आमंत्रण।
,, ,, एक घंटा पूर्व	तोरण पूजा–वर पूजन वर पिता द्वारा वधु पूजन अभ्यंग स्नान।
मुख्य विवाह काल	**परस्पर–समीक्षण। पाणि गृहण वधु–वरके हात से हवन।**
विवाह काल के एक घंटा पश्चात्	सभ्य पुरषों से वधु–वर को आसीस. आमंत्रितों का स्वागत।
,, ,, दो घंटा पश्चात्	पान–सुपारी–फूलमाला आदि वधु–वर को और आमंत्रितों को देना.
,, ,, तीन घंटा पश्चात्	सुधार विषय पर किसी अच्छे विद्वान का व्याख्यान.
,, ,, चार घंटा पश्चात्	भोजन–जलपान–आदि कार्य बरातियों के प्रति करना.
,, ,, पांच घंटा पश्चात्	आराम करने के लिए निश्चित किया समय.
,, ,, छे घंटा पश्चात्	वधु–वर का गृह पर प्रस्थान–बरातियों आमंत्रितों की बिदाई.

वर पक्षकी ओर से

केवल बारह घंटों में परिपूर्ण होनेवाले विवाह के तमाम कृत्य।

समय की सूचना	संक्षिप्त विवरण
विवाह काल के छे घंटा पूर्व	गणपति पूजन–सांकड़ी राखी–बान इत्यादि कृत्य.
,, ,, पांच ,,	कौटुंबिकों का सह भोज– पान सुपारी आदि देना.
,, ,, चार ,,	वधु गृह पर जानेका प्रस्थान (उर्फ निकासी)
,, ,, तीन ,,	प्रवास का समय······· जाकर वधु के ग्राम में प्रवेश.
,, ,, दो ,,	वधु के ग्राममें प्रवेश–द्वारपूजा–तोरण पूजा आदि.
,, ,, एक ,,	वधु पिता के आमंत्रण पर जाना और उनकी मधुपर्क पूजा स्वीकार
,, ,, **मुख्य विवाह काल**	**परस्पर समीक्षण। पाणि–गृहण। वर·वधु के हातसे हवन।**
,, ,, एक घंटा पश्चात्	आमंत्रित सभ्य पुरुषों से वधु वरने शुभाशिर्वाद लेना.
,, ,, दो ,, ,,	आगत सज्जनों का स्वागत पान–सुपारि आदि सत्कार
,, ,, तीन ,, ,,	किसी अच्छे विद्वान् व्यक्ति द्वारा सुधार विषय पर प्रवचन व्याख्यान
,, ,, चार ,, ,,	भोजन– जलपान–आमंत्रितों का स्वागत पूर्ण भोजन.
,, ,, पांच ,, ,,	आराम करने के लिए निश्चिन किया समय.
,, ,, छै: ,, ,,	वधु–वर का गृह पर प्रस्थान। शुभागमन.